ओ३म्

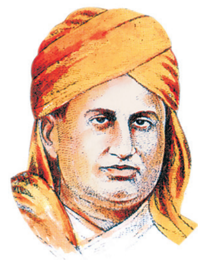

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 07 जून 2026

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार, 07 जून 2026 से 13 जून 2026

ज्येष्ठ कृ. 07 • वि० सं०-2082 • वर्ष 67, अंक 23, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 202 • सृष्टि-संवत् 1,96,08,53,126 • पृ.सं. 1-12 • मूल्य - 5/- रु. • वार्षिक शु. 300/- रु.

आर्यरत्न डॉ. पूनम सूरी, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के प्रधान निर्वाचित

सभा का 131वाँ वार्षिक साधारण अधिवेशन सम्पन्न

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का 131वाँ वार्षिक साधारण अधिवेशन 31 मई 2026 को आर्यसमाज (अनारकली), मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली के सभागार में माननीय सभा प्रधान डॉ. पूनम सूरी जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशन में देश के 11 राज्यों से आए 185 प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

आर्यरत्न डॉ. पूनम सूरी को पुनः निर्विरोध रूप से वर्ष 2026–2027 के लिए सभा प्रधान निर्वाचित किया गया।

उप–प्रधान पद के लिए श्री प्रबोध महाजन, मंत्री पद के लिए श्री एस. के. शर्मा, सहमंत्री पद के लिए श्री सत्यपाल आर्य एवं श्री अजय सहगल, कोषाध्यक्ष पद के लिए श्री अशोक कुमार अदलखा एवं पुस्तकालयाध्यक्ष पद पर श्री जे. पी. शूर निर्वाचित हुए।

वर्ष 2026–27 के लिए निर्वाचित प्रधान डॉ. पूनम सूरी एवं अन्य पदाधिकारी

नवनिर्वाचित सभा प्रधान डॉ. पूनम सूरी ने सदन को सम्बोधित करते हुए उन पर प्रदर्शित विश्वास के लिए धन्यवाद किया और कहा कि आज मानव भ्रम के गहन अंधकार में भटक रहा है। उसे जीवन का सही मार्ग सूझ ही नहीं रहा है। श्रद्धा, विश्वास और तर्क की पहेली में उलझकर रह गया है। उन्होंने तर्क व श्रद्धा के अनेक सरल व शिक्षाप्रद दृष्टान्त देकर इस गूढ विषय को हृदयग्राही बना दिया।

प्रधान जी ने डी.ए.वी. व आर्यसमाजों को वैदिक धर्म का प्रचार–प्रसार करने के लिए उत्साहित किया। उन्होंने **'नो नशा नेशन अभियान'** की भूरि–भूरि

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है और ब्रह्मा से लेके सब ऋषि मुनियों का पूज्य था, है और होगा, इससे उस परमात्मा का नाम **'यज्ञ'** है। क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है। स. प्र. समु. १

{संपादक – पूनम सूरी}

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार, 07 जून 2026 से 13 जून 2026

दोनों हाथों से भर-भरकर दे

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

दिवो विष्ण उत वा पृथिव्याः, महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात्।
हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैः, आप्रयच्छ दाक्षिणादोत सव्यात्।।

अथर्व 7.26.8

ऋषिः **मेधातिथिः**। देवता **विष्णुः**। छन्दः **त्रिष्टुप्**।

● (**विष्णो**) हे सव्रव्यापक परमात्मन्! (**दिव**) द्युलोक से (**उत वा**) और (**पृथिव्याः**) पृथिवी–लोक से [तथा] (**विष्णो**) हे विश्वान्तय्रामिन्! यज्ञ के देव! (**महः**) महनीय (**उरोः**) विस्तीर्ण (**अन्तरिक्षात्**) अन्तरिक्ष–लोक से (**बहुभिः**)वहुत– से (**वसव्यैः**) ऐश्वर्य–समूहों से (**हस्तौ**) दोनों को (**पृणस्व**) भर ले। (**दक्षिणात्**) दाहिने हाथ से (**आ प्रयच्छ**) दान दे (**उत**) और (**सव्यात्**) बाएँ से [भी] (आ [प्रयच्छ]) दान दे।

● हे विष्णु! हे सर्वव्यापक! हे विश्वान्तर्यामिन्! हे विश्व–ब्रह्माण्ड के स्वामिन! तुम अपूर्व धनाधीश हो। विश्व के द्युलोक, अन्तरिक्ष–लोक और पृथिवी–लोक में जो धन बिखरा पड़ा है, वह सब तुम्हारा ही है। अतः तुम धन–कुबेर हो। एक और तुम धनपति हो ओर हम अकिंचन हैं। अतः हम चाहते हैं कि तुम अपने कोष में से दाहिने–बाएँ दोनों हाथों से भर–भरकर हमें दान दो। तुम्हारे रचे द्यु–लोक में प्रकाश का अनुपम पारावार भरा पड़ा है। वह प्रकाश तुम हमें भी प्रदान करो। तुम्हारे रचे विशाल अन्तरिक्ष–लोक में वायु और पर्जन्य का सागर उमड़ रहा है। उसमें से हमें भी प्राण–वायु और अमृतमय वृष्टि–जल प्रदान करो। तुम्हारे रचे पृथ्वी–लोक से सुवण, रजत, ताम्र अयस, हीरे, मोती आदि ऐश्वर्यों की निधियाँ भरी हुई हैं। वे ऐश्वर्य तुम हमें भी प्रदान करो। अल्प मात्रा में नहीं, प्रचुर मात्रा में प्रदान करो, क्योंकि हम ऐश्वर्यमय जीवन जीने की ही साध लिये हुए हैं।

पर हे विश्वव्यापी देव! हम केवल इन भौतिक ऐश्वर्यों का ही पाकर सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहते। हम शरीरस्थ द्यु–लोक, अन्तरिक्ष–लोक और पृथिवी–लोक के ऐश्वर्यों को भी पाने के लिए आतुर हो रहे हैं। हमारा अन्नमय कोश ही पृथिवी–लोक है, जिसमें शरीर की त्वचा से लेकर अस्थि–पर्यन्त सब ढांचा आ जाती है। असका ऐश्वर्य है शारीरिक स्वास्थ्य और शारीरिक बल, जिसके बिना मनुष्य का जीवन–यापन,व्यान,उदान, समा, इन पांचों से तथा कर्मेन्द्रियों से मिलकर प्राणमय कोश बनता है। इसका ऐश्वर्य है प्रागण, अपानन आदि क्रियाओं का समुचित रूप से होते रहना तथा हस्त–पादादि कर्मेन्द्रियों को कार्य–क्षम बने रहना। मन और ज्ञानेन्द्रियों से मिलकर मनोमय कोश बनता है। इसका ऐश्वर्य है मन के माध्यम से ज्ञानेन्द्रियों का ज्ञान–प्राप्ति में सहायता होना तथा मन का सत्यसंकल्प करना। ज्ञानेन्द्रियों–सहित बुद्धि विज्ञानमयकोश कहलाता है। इसका ऐश्वर्य है ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान पर ऊहापोह करके निश्चयात्मक ज्ञान अर्जित करना। आनन्दमय कोश द्यु–लोक है, जहाँ हृदयपुरी में प्रतिष्ठित आत्मा के अन्दर ब्रह्म का वास है। इसका ऐश्वर्य है ब्रह्मानन्द की प्राप्ति। हे विष्णुदेव! तुम इन समस्त ऐश्वर्यों से भी भरपूर करने की कृपा करते रहो।

हे जगत्पिता! तुम निरैश्वर्य की अवस्था से पार करके हमें अधिकाधिक ऐश्वर्य प्रदान कर कृतार्थ करते रहो।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

प्रभु–भक्ति

● महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

'प्रभु–भक्ति' पुस्तक में स्वामी जी मोक्ष प्राप्ति के मार्ग को प्रशस्त करने के लिए मन को साधने का बहुत ही सटीक व सरल मार्ग सुझा रहे हैं।
भक्त की भगवान से प्रार्थना को दर्शा रहे हैं। भक्त कहते हैं–हे प्रभो ! आप मेरे पाप दूर करके सुख प्रदान करें। मुझे मानसिक पीड़ा हो रही है उसे हरो और मुझे सुखी कर दो। मैं आपकी भक्ति करना चाहता हूँ। मैं आपकी सच्ची भक्ति करके आपको पाना चाहता हूँ। मेरा मार्ग प्रशस्त करो जिससे मैं निष्पाप होकर भक्ति भाव से आपको अतिशीघ्र प्राप्त कर सकूँ।

परमात्मा की भक्ति करने वाले भक्त ! तू प्रभु की सच्ची भक्ति कर और परमात्मा की भक्ति के फल के लिए प्रतीक्षा कर, एक दिन आपकी भक्ति सफल अवश्य होगी, आपका जीवन सफल होगा, आपका प्रभु प्यार आपके जीवन में सफलताओं व खुशियों के पुष्प पुष्पित व पल्लवित करने में समर्थ होगा। फल प्राप्त करने के लिए समय अवश्य लगता है अतः तू अधीर मत हो। समय आने पर फल अवश्य मिलेगा। मन को देश भक्ति में लगाने में जब आप लग गए हैं तो इसका फल शीघ्र मत चाहो, लगे रहो, फल अवश्य ही मिलेगा....। **.... अब आगे**

भक्तों के लिए उपयोगी बातें

1. उषा–काल से पहले 3 अथवा 4 बजे बिस्तर से उठ जाना चाहिए।
2. रात को सोते समय **'तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु'** के सारे मन्त्र इस प्रकार से उच्चारण करने चाहिएँ कि अपने कानों को भी सुनाई दें।
3. ओ३म् का जाप चलते–फिरते भी करते रहना चाहिए।
4. पेट को न बहुत भरना चाहिए, न बहुत खाली रखना चाहिए।
5. बहुत थका देने वाला व्यायाम नहीं करना चाहिए। हल्का व्यायाम नित्यप्रति करना चाहिए। जिस दिन किसी विशेष कारण से व्यायाम न हो सके, उस दिन मानसिक व्यायाम ही कर लिया करें।
6. अभ्यास, ध्यान, भजन तथा जाप नित्य समय पर और पूरे नियम और सावधानी के साथ करने चाहिएँ।
7. अपने घर में कोई एक स्थान नियत कर लो और प्रयत्न करो कि भजन के लिए नित्य वहीं बैठा करो।
8. संसार अनित्य है। मनुष्य अन्न की तरह पकता है और अन्न की तरह उत्पन्न होता है। मरना मनुष्य के लिए नियत है, यह अनहोनी बात नहीं। (कठ)
9. परमात्मा की प्राप्ति का उपाय यह है कि वाणी आदि सारी इन्द्रियों को मन में रोकें, मन को बुद्धि में रोकें, बुद्धि या ज्ञान को महान् आत्मा (महत् तत्त्व) में रोकें और उस महान् को शान्त आत्मा में रोकें। (कठ)
10. मूर्ख बाहरी और सांसारिक कामनाओं के पीछे जाते हैं और वे मृत्यु की फाँसों में पड़ते हैं, और धीर पुरुष अमृतत्व को जानकर वहाँ अस्थिर वस्तुओं की कामना नहीं करते। (कठ)
11. जो अकेला सारे संसार की हर प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करता है, उसको पुरुष अपने आत्मा में स्थिर रखता है, उसको सदा की शान्ति होती है।
12. ब्रह्म–लोक उनके लिए है जिनमें तप और ब्रह्मचर्य हैं और जिनमें सच्चाई स्थिर है, जिनमें कोई कुटिलता नहीं और कोई छल नहीं। (प्रश्न)
13. ओम् धनुष है, आत्मा तीर है, और ब्रह्म उसका लक्ष्य कहलाता है। इसको पूरा सावधान पुरुष बींध सकता है। (मुण्डक)
14. जो सबको जानता है और सबको समझता है, जिसकी यह प्रत्यक्ष इस भूमि पर महिमा है, वह आत्मा दिव्य ब्रह्मपुर (हृदय के आकाश) में रहता है। (मुण्डक)
15. सत्य, तप, वास्तविक ज्ञान और ब्रह्मचर्य से यह आत्मा सदा पाया जाता है। (मुण्डक)
16. जिस प्रकार की कामनाओं का विचार करता हुआ मनुष्य मरता है, उन्हीं कामनाओं के अनुसार जन्म लेता है। (मुण्डक)

17. अन्न की कभी निन्दा न करे, यह व्रत है; अन्न को परे न हटाए, उसका अनादर न करे, यह व्रत है; अन्न का बहुत सम्मान करे, यह व्रत है; अतिथि को अपने घर से कभी वापस न करे, यह व्रत है। (तैत्तिरीय)
18. पुरुष को चाहिए कि "ओम्" इस अक्षर की उपासना करे। इस ओम् ही से सारे वेद प्रवृत्त होते हैं। (छान्दोग्य)
19. यह मेरा आत्मा है, हृदय के अन्दर, धान से छोटा है, जौ से छोटा है, सरसों से छोटा है, सिमाक (सवांक) से छोटा है, सवांक के चावल से भी छोटा होता है।

    यह मेरा आत्मा है, हृदय के अन्दर, पृथिवी से बड़ा है, अन्तरिक्ष से बड़ा है, द्यौ से बड़ा है, इन सब लोकों से बड़ा है। सारे कर्म, सारी कामनाएँ, सारे सुगन्ध और सारे रस उसके हैं। वह इस सबको घेरे हुए है, वह कभी बोलता नहीं, वह बेपरवाह है। यह मेरा आत्मा है हृदय के अन्दर, यह ब्रह्म है, इसको मैं यहाँ मरकर प्राप्त हूँगा, ऐसा जिसका पूरा विश्वास है और कोई सन्देह नहीं, वह उसे पा लेता है। (छान्दोग्य)
20. एक सन्दूक है यह संसार, जिसका निचला तल पृथिवी है, ऊपर का ढकना द्यौ है और पेट अन्तरिक्ष है और मनुष्यों के कर्म, साधना और फलों का खजाना इसमें भरा है। (छान्दोग्य)
21. जैसे शिकारी के धागे से दृढ़ बँधा हुआ कोई पक्षी दिशा–दिशा में उड़कर–फड़फड़ाकर – और कहीं आश्रय न पाकर उसी स्थान का आश्रय लेता है जहाँ वह बँधा हुआ है, ठीक उसी तरह यह मन दिशा–दिशा में घूमकर और कहीं आश्रय न पाकर प्राण का ही सहारा लेता है क्योंकि यह मन प्राण में बँधा हुआ है। (छान्दोग्य)

    इसीलिए मन को काबू करने के लिए प्राण को काबू करना आवश्यक है।
22. फूटे घड़े में भरे हुए जल के समान मनुष्य की आयु प्रतिक्षण क्षीण हो रही है। वृद्धावस्था सिंहनी के समान समीप में ही गर्जना कर रही है, मृत्यु सिर पर सदा नाच रही है, लक्ष्मी छाया के समान चंचल है, यौवन जलतरंग के समान क्षणभंगुर है, अतएव जो समय है, इसी में भगवान् का भजन कर लो।
23. आत्म–प्राप्ति और प्रभु–प्रेम का सबसे बड़ा और स्वच्छ राजमार्ग केवल ब्रह्मचर्य है। बिन्दु के क्षरण से मृत्यु और इसके रक्षण से अमृत मिलता है।
24. अपने नेत्रों को चंचल न होने दो, स्त्रियों की ओर गहरी दृष्टि से न देखो, ब्रह्मचारी के मन में यह क्षोभ उत्पन्न कर देती है। (दयानन्द)
25. **'सङ्गः सत्सु विधीयताम्'** (साधन पंच कर) सन्तों का संग करो।
26. **'अलं प्रसन्ना हि सुखाय सन्तः।'** सन्त प्रसन्न हुए परम सुख के कारण होते हैं। (महाभारत)
27. **'भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम'**– भगवत्सम्बन्धी अच्छी भद्र बात कानों से सुनें। (ऋग्वेद)
28. **'भद्रं नो अपिवातय मनः'**–हे प्रभो! हमारे मन को भली बातों की ओर प्रेरित कीजिए। (सामवेद)
29. भक्त के लिए कर्मों का त्याग नहीं, किन्तु स्वार्थमय कर्मों का त्याग आवश्यक है।
30. परमात्मा में पूर्ण अनुरक्ति का प्रयोजन यह है कि संसार के प्रति निस्स्वार्थ प्रेम और उसकी विशुद्ध सेवा हो।
31. इस अनित्य संसार में आकर, अनित्य जीवन धारण कर, अनित्य सुख–ऐश्वर्य में भूलकर, आत्म–कल्याण को नहीं भूलना चाहिए।
32. सत्पुरुषों का संग भक्त के लिए आवश्यक है; यह बहुत–से संशय मिटाकर विज्ञान बढ़ाता और मन को निश्चय करने में बड़ा सहायक होता है।
33. दुर्जन मनुष्य विद्वान् हो, तो भी उसका संग छोड़ देना चाहिए; मणि से भूषित साँप क्या भयंकर नहीं होता?
34. भक्त के लिए अत्यन्त आवश्यक है कि वह अपने हृदय में भगवान् के लिए प्रबल पिपासा को जगा दे। जब इस पिपासा से भक्त बेकरार हो उठता है तो फिर भगवान् की ज्योति सहज में प्राप्त हो जाती है।
35. ओ भगवान् का आह्वान करनेवाले भक्त! यह क्या कर रहा है? पवित्रता के उस स्रोत को मैले मन में कैसे ला सकेगा? इसे पहले शुद्ध कर ले! कुछ तो कूड़ा–करकट हटा ले, फिर उसे भी बुला लेना। भक्त ने कहा, मैं इसीलिए तो उसे भी बुलाता हूँ कि मैं हार गया हूँ; मुझसे मैला मन साफ नहीं होता, असमर्थ हो चुका हूँ। भगवन् अब कृपा कर दो न!
36. किसी को पीड़ा दिये बिना, किसी को सताये बिना, किसी की हानि किये बिना अपने बाहुबल अथवा मस्तिष्कबल से जो धन वा अन्न कमाया जाता है, वही मन को शुद्ध रख सकता है।
37. वाणी में मिठास नहीं है, और सत्य बोल रहा है, तो भी ठीक नहीं। सत्य बोलो परन्तु ऐसा जो कड़वा न हो–दूसरों के हृदय चीर डालनेवाला न हो।
38. मन, वचन और काया–कर्म, तीनों से दूसरों का उपकार करते रहना ही सन्त–भक्तों का सहज स्वभाव हुआ करता है।
36. अच्छे भक्त जनों का संग बड़ी कठिनाई से पुण्य रहने पर ही प्राप्त होता है। मनुष्य का अच्छा या बुरा होना सब संगति पर निर्भर है। जल की बूँद वही है किन्तु जलते हुए तवे पर पड़ने पर उसका नाम तक नहीं रहता। वही बूँद कमल के पत्ते पर पड़ने से मोती–सरीखी दिखाई देती है। समुद्र की सीप में जब वह गिरती है तो मोती बन जाती है। यह संग का फल है।
40. जिस पुरुष ने विषय के दोष और वीर्य–रक्षण के गुण जाने हैं, वह विषयासक्त कभी नहीं होता और उसका वीर्य विचाराग्नि का ईंधनवत् है, अर्थात् उसी में व्यय हो जाता है। (सत्यार्थप्रकाश)
41. स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण–कर्म–स्वभाव से अपने गुण–कर्म–स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होता है और जो केवल भाँड के समान परमेश्वर के गुण–कीर्तन करता जाता है और अपने चरित्र को नहीं सुधारता, उसकी स्तुति करना व्यर्थ है। (सत्यार्थप्रकाश)
42. एक बार यदि मन भगवत्–रस का स्वाद पा ले तो फिर कामना पर सहज ही विजय प्राप्त की जा सकती है।
43. पुरुष यदि काम को बार–बार अस्वीकार करे, त्याग करे, उसके खेल में तनिक भी साथ न दे तो प्रकृति से वह सम्पूर्ण रूप से अलग हो जाता है और यही संयम की वास्तविक साधना है।
44. मनुष्य का यही नज़र आनेवाला स्थूल शरीर ही नहीं है, इसके अतिरिक्त जीव का एक और देह है जिसे सूक्ष्म शरीर या लिंग–शरीर कहा जाता है। इसमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, और पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन और बुद्धि–ये सत्रह उपादान हैं। इस सूक्ष्म शरीर ही में वासनामय संस्कार चिपटे रहते हैं, और इन्हीं के फलस्वरूप जीव पर–वश होकर कर्म करने को बाध्य होता है। इन्हीं वासनाओं का नाश करना भक्त का कर्त्तव्य है।
45. वासनाओं के नाश करने का प्रथम साधन यह है कि मन में वैराग्य उत्पन्न करो, परन्तु अपने इस वैराग्य को किसी पर प्रकट मत करो! भीतर–ही–भीतर वैराग्य की बेल को बढ़ाते जाओ। यदि चुपचाप वैराग्य को बढ़ाते जाओगे तो वासनाएँ अपने–आप भागने लगेंगी।
46. नम्र वाणी, विनय और प्रेम का प्रदर्शन चाहे जितना भी करो, घर में रह रहे हो तो भाइयों से, सबसे नम्र वाणी का प्रयोग करो।
47. अपने जीवन को सादा बनाओ। बहुत थोड़ी वस्तुओं से निर्वाह करो। जितनी भी आवश्यकताएँ और इच्छाएँ कम करते चले जाओगे, उतना ही अधिक परमात्मा के निकट होते चले जाओगे।
48. यदि भगवान् की कृपा के पात्र बनने की अभिलाषा है तो भगवान् जिस स्थिति में रक्खे, उसी में सन्तुष्ट रहने की आदत बना डालो।
46. तुम्हारे शत्रु सावधान हैं, तुम्हें नष्ट कर देने का मौका ढूँढ रहे हैं। सुन्दर, मन–लुभावने तथा हृदय–आकर्षक दृश्यों और कामनाओं में फँसाकर ये तुम्हें निर्बल कर देंगे और फिर तुम्हें लूट लेंगे। ओ युवक ! अपनी जवानी के बल से इन काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार– रूपी शत्रुओं पर विजय पा ले, नहीं तो वृद्धावस्था में ये बुरी तरह तुम्हें सतायेंगे और आनन्द का सारा कोष लूट ले जायेंगे।
50. जब जीव मन, वाणी और कर्म से किसी का अनिष्ट नहीं करता, काम, क्रोध, ईर्ष्या, असूया आदि मनोमलों को त्याग देता है, तब भगवान् का प्यारा बन जाता है।

क्रमशः

सत्य की प्राप्ति

● भद्रसेन

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति, श्रद्धयां सत्यमाप्यते।।
यजु.

शब्दार्थ— **व्रतेन**=व्रत करने से **दीक्षां** दीक्षा को **आप्नोति** प्राप्त होता है। **दीक्षया**= अच्छाई को स्वीकार करने व्यवहार में लाने से **दक्षिणाम्**=पूजा–श्रद्धा–आदर पूर्वक धनादि **प्राप्नोति** = प्राप्त होता है। **दक्षिणा**=दक्षिणा से कुशलता, निपुणता को प्राप्त करता है। श्रद्धया श्रद्धा से (सत्य के धारण से) सत्य का मार्ग स्पष्ट होता है, श्रद्धा द्वारा सत्य की प्राप्ति होती है। सत्य को अपनाने से सचाई सामने आती है।

व्याख्या— मन्त्र में **व्रतेन, दीक्षया, श्रद्धया** तीसरी विभक्ति के हैं। जो किसी ढंग, कारण, साधन के लिए आती है। इसको करण भी कहते हैं। जिसकी परिभाषा परिचय देते हुए कहा है–**साधकतमं करणम्** = जो सब से अधिक सहायक हो।

यहाँ लक्ष्य, उद्देश्य–सत्य की प्राप्ति है। इसके चार स्तर हैं। ये आचरणीय तथ्य हैं। 1. कर्म–आचरण, 2. स्वीकारना मार्ग का, 3. उपलब्धि का प्रारम्भ 4. प्राप्ति के प्रारम्भ होने से प्रसन्नता, विश्वास होता है तब स्वतः सत्य सुनिश्चित हो जाता है।

व्रतेन– इसकी शास्त्रों और लोक व्यवहार में पर्याप्त चर्चा होती है। –निरुक्त 2.4 **'व्रतमिति कर्मनाम वृणोतीति सतः।** 'निघण्टु में जो कर्म के नाम (= पर्याय) हैं, उनमें से एक व्रत भी है। कार्यकर्त्ता द्वारा चाहा, स्वीकारा, वरा, छाँटा जाता है। यज्ञोपवीत (उपनयन) संस्कार के समय अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र को व्रतपति कह कर आहुति निर्देश है। ये सारे प्राकृतिक कर्म करने वाले भौतिक पदार्थ हैं।

यहीं शिष्य, आचार्य के सम्मुख– **मम व्रते**....मन्त्र का पाठ करता है। पुनः वेदारम्भ में भी ऐसा ही है, विवाह में वर–वधू दोनों–'**मम व्रते**–का पाठ करते हैं।

विद्या–अध्ययन और गृहस्थ विशेष कर्म हैं जो स्वीकारे, चुने जाते हैं।

2. **निवृत्ति कर्म, वारयति**–(निरुक्त)। छोड़ना जैसे झूठ का, आज भी तीर्थ से लौटते हुए कोई पदार्थ छोड़ते हैं।

3. **अन्नमपि व्रतमुच्यते–यदा वृणोति शरीरम् अन्न।** (=आहार) शरीर को हृष्ट पुष्ट करता है। अतः वह भी व्रत कहा जाता है।

जीवन में यम–नियम (सामाजिक धर्म वैयक्तिक कर्त्तव्य हैं, अतः सत्य आदि का पालन व्रत ही है।

जात कर्म संस्कार में पारस्कर गृह्य सूत्र के प्रकरण द्वारा दीर्घ आयु की चर्चा है। वहाँ ऋषियों का व्रतों से सम्बन्ध दर्शाते हुए व्रत पालन से आयुष्मान कहा है अर्थात् ऋषियों की जीवनचर्या दिनचर्या नियमित व्यवस्थित होती है। अतः वे सफल–सार्थक सिद्ध होते हैं। **साक्षात्कृत–धर्माण ऋषयः**–जिन्होंने यह स्पष्ट प्रत्यक्ष कर लिया है, कि परमसत्ता ही प्राकृतिक पदार्थों व्यवस्थाओं का कर्ता–धर्त्ता, संचालक–नियामक है अतः इनके अपनाने से दीर्घ आयु को कोई को प्राप्त करता है।

व्रतेन दीक्षामाप्नोति = व्रत के वरण से दीक्षा आती है। दीक्षा=मन से मानना, स्वीकारना, कि इस–इसके पालने से यह–यह परिणाम होता है। **'अग्ने व्रतपते, ...अनृतात् सत्यमुपैमि'** में सत्य के धारण को व्रत कहा गया है।

दीक्षा– धर्म दीक्षा और दीक्षान्त समारोह, दोनों से दीक्षा शब्द स्वीकारना अर्थ में प्रतीत होता है। दीक्षान्त में किसी की क्या–कितनी विद्या है? यह घोषित किया, स्वीकारा जाता है। सत्य, यम–नियम जैसे व्रत सभी के लिए लाभप्रद, उपयोगी, उचित, उपयुक्त, सार्थक हैं ऐसा स्वीकारना, मानना ही दीक्षा है। ऐसी भावना से जब कोई भरता, पूर्ण होता है तभी वह व्यवहार, बर्ताव में उस को लाता है। योगदर्शन में यम–नियम को देश–काल–जाति के विचार/भेद से दूर रहते हुए करना चाहिए अर्थात् इन को सभी के लिए सर्वत्र–सदा–सर्वथा सार्थक, व्यवहार्य, अनिवार्य कहा है ऐसा स्वीकारना ही दीक्षा है। दीक्षित शब्द भी यही दर्शाता है।

दक्षिणा–पूज्यों, योग्यों को जो श्रद्धा पूर्वक दिया जाता है वह आजकल दक्षिणा कहलाता है। वेतन पूर्व (पहले) से निश्चित होता है, दक्षिणा स्वेच्छा से होती है अतः उपलब्धि, प्राप्ति ही मूलभाव है। दक्ष से भी दक्षिणा शब्द बना सकते हैं। तब अर्थ होगा–योग्य, कुशलता, निपुणता। प्राकृतिक व्यवस्था की पालना–दीक्षा से पालने वाले में दक्षता, योग्यता, कुशलता, स्फूर्ति, निपुणता, चुस्ती आती है। तभी मन्त्र कह रहा है–**दीक्षया आप्नोति दक्षिणाम्।**

श्रद्धा–श्रत्+धा=श्रद्धा, आज विश्वास, आस्था, भावना अर्थ में प्रचलित है। मन्त्र में **दक्षिणया श्रद्धां– आप्नोति** क्रम है। वैसे ऋग्वेद का श्रद्धा सूक्त प्रसिद्ध है। **दक्षिणा या श्रद्धामाप्नोति**=दक्षता, स्फूर्ति, प्रीति लगाव, स्वास्थ्य से अपने अन्दर विश्वास जागता है, भरोसा उभरता है, आस्था जमती है अतः सारांश रूप से दीक्षा, दक्षिणा, श्रद्धा को एक वाक्य में ऐसे कहेंगे। 'जैसे–जैसे कोई प्राकृतिक व्यवस्थाओं को स्वीकारता=पालता है। वैसे–वैसे वह दक्ष, कुशल होता जाता है। इस स्फूर्ति, चुस्ती से (स्वास्थ्य द्वारा) विश्वास आता है। उदाहरण के लिए कह सकते हैं–जैसे जब कोई नियमित व्यवस्थित रूप से भ्रमण करता है वैसे–वैसे वह भ्रमण का लाभ उपयोगिता, सचाई, तथ्य प्राप्त करता जाता है। यही है–**श्रत**= सचाई को **धा**=अपनाने से विश्वास भावना (श्रद्धा) **श्रद्धया सत्यमाप्यते**–निश्चय, निर्णय लगाव, पक्का होता है।

सत्य से सम्बद्ध एक मन्त्रांश लेते है। वह है–**ऋतं च सत्यंच** यहाँ दो बार **च** है। लौकिक संस्कृत भाषा में च एक बार होता है। हाँ, **अध्यजायत** क्रिया एक वचन की है। **'अग्ने व्रतपते अनृतात् सत्यमुपैमि'** न+ऋत =अनृत, विपरीत अर्थ में है। इससे दोनों एक अर्थ वाले सिद्ध हो जाते हैं। तैत्तिरीय उपनिषद में आया–**'ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि'** से एकार्थ की पुष्टि करता है। हां, अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त में **सत्यं–ऋतं** पृथक् दर्शाये हैं। इसकी पुष्टि **ऋ** धातु से बना **ऋतु** शब्द करता है, जो मौसम वाचक है। यह एक प्राकृतिक व्यवस्था है। यह सचाई सब के लिए एक–सी है । ऋत से सत्य भिन्न अर्थ वाला है। सत्य मानव सम्बद्ध सचाई होती है जो देश–काल की सीमा वाली होती है जैसे भारत जैसे देशों में सड़क के बाँयी ओर पर अमेरिका जैसे में दाँयी ओर। अतः ऋत प्राकृतिक है।

182 शालीमार नगर,
होशियारपुर 146001

गतांक से आगे...

मानव-निर्माण में वैदिक मूल्यों का समावेशः एक विवेचन

● प्रो. धर्मेन्द्र कुमार

इस प्रकार प्रस्तुत विवेचनीय मंत्र में शिक्षा कैसी हो? और शिक्षार्थी छात्र गुरुकुल में कब तक पढ़ता रहे तथा आचार्य में किन–किन उत्तम गुणों का होना आवश्यक है, आदि का विधान कहा गया है। सारांश यह है कि आचार्य सौम्य स्वभाव वाला कर्कश व कठोर न होकर मृदु स्वभाव वाला, विनीत, सुसभ्य, चरित्रवान्, गर्भवान् व आकर्षक हो और अपने शिष्य के सर्वांगीण उन्नति करने में समर्थ हो। आज उपर्युक्त मंत्र की कितनी अधिक प्रासंगिकता है, हम स्वयं जान सकते हैं।

विद्यार्थी को भी आश्रमवास, उपनयन संस्कार तथा ब्रह्मचर्यव्रत को धारण करना होता था। उसे श्रम ही श्रम करना होता था। आश्रम शब्द का अर्थ ही होता है–चारों तरफ से विकास, मेहनत **"स आचार्य तपसा पिपर्ति। ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"** उसे तप करना आवश्यक था। सर्दी–गर्मी, धूप–छाँव आदि द्वन्द्वों का सहन करना।

यह वैदिक शिक्षा–प्रणाली की ही विशेषता थी–नवयुवकों को तपस्वी बनाना। तपस्या के बाद आश्रमवास, ऊँच–नीच, अमीरी गरीबी के भेदभाव को मिटाना, न कोई गरीब न कोई अमीर। सब भेदभावों को भुलाकर एक समान स्थान में बैठकर विद्याऽर्जन करना ही उनका ध्येय व लक्ष्य था। दोनों गुरु–शिष्य एक दूसरे के इतने निकट आ जाते थे कि वे एकमना हो जाते थे **'मम वाचमेकमना जुषस्व'**। दोनों के चित्त और हृदय Head & Heart एक हो जायें। तभी तो बालक को अंतेवासी कहा गया है, वह मानो गुरु का शिष्य ही नहीं अपितु उसके पुत्र के समान है। उसे ब्रह्मचर्य का व्रत धारण कराया जाता था, ब्रह्मज्ञान के साथ–साथ शारीरिक शक्ति का रक्षण करना। इस प्रकार शिक्षा का लक्ष्य बालक को पुस्तकीय शिक्षा के साथ–साथ उसे सदाचारी बनाना है। उस ब्रह्मचारी को जो कि गुरुकुल में प्रविष्ट हुआ है। पिता स्वयं उसे उपदेश देते थे–"हे बालक! तू आज से ब्रह्मचारी है। जल का प्रचुर प्रयोग करना। सदा कार्य में लगे रहना। आलसी व प्रमादी मत बनना। भाग्य को पछाड़कर पुरुषार्थ से जीना, अपने जीवन का लक्ष्य सदा ऊँचा रखना, चरैवेति–चलते रहो, चलते रहो को जीवन का अभिन्न अंग बना देना, दिन में न सोना, अपने आचार्य की आज्ञा का पालन करना, ज्ञान की

शेष पृष्ठ 05 पर ☞

प्राणाय स्वाहा

(छान्दोग्योनिषद् पर आधारित)

● डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

'गुरुवर! हम यज्ञ करते हुए यज्ञ कुंड में आहुति देते समय कहते हैं—'प्राणाय स्वाहा' अर्थात् प्राण स्वरूप ईश्वर के लिए यह आहुति है। मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या आहुति से प्राण तृप्त होते हैं या और कुछ भी?" शिष्य ने गुरुजी से जिज्ञासा मूलक प्रश्न पूछा।

"वत्स, इस ब्रह्माण्ड के समग्र रहस्य को कोई भी पूर्णतया नहीं समझ सकता। इस संसार में सभी पदार्थ सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, द्युलोक, पृथ्वीलोक, ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार, पाँच प्राण, पाँच महाभूत त्रिगुणात्मक प्रकृति आदि सभी एक—दूसरे से जुड़े हुए हैं, एक—दूसरे के पूरक हैं। एक को आहुति दो तो दूसरे को भी तृप्ति मिल जाती है। मुँह से भोजन करो तो तन के सभी अंगों को भी तृप्ति मिल जाती है।" गुरुजी ने शिष्य को समझाया।

"मेरा प्रश्न यह है कि प्राण को आहुति देने से किसको तृप्ति मिलती है?" शिष्य ने पूछा।

"सुनो वत्स, शास्त्र कहता है **'प्राणे तृप्यति चक्षु'** अर्थात् प्राण के तृप्त होने पर चक्षु तृप्त हो जाती है। नेत्रों में एक प्रकार के आनंद—उल्लास और ज्योति की झलक दीखने लगती है।"

"चक्षु के तृप्त होने पर क्या और किसी को भी तृप्ति मिलती है?"

"हाँ वत्स, **'चक्षुष्तृप्यादित्यः'** अर्थात् चक्षु के तृप्त होने पर आदित्य (सूर्य) मी तृप्त हो जाता है। सूर्य ज्योति या प्रकाश का पुंज है और उसका अंश भूत प्रकाश नेत्रों में रहता है। आप यों भी कह सकते हैं कि नेत्र सूर्य का ही शिशु है अतः नेत्र के तृप्त होने पर सूर्य—पिता को तृप्ति क्यों नहीं होगी?"

"यदि सूर्य को तृप्त कर लिया जाए तो?"

"सूर्य को आहुति देने पर अर्थात् सूर्य के तृप्त होने पर द्युलोक तृप्त हो जाता है क्योंकि सूर्य का आधार भूत द्युलोक ही है।

"क्या द्युलोक के तृप्त होने पर और कोई भी तृप्त हो जाते हैं?"

"अरे पगले, द्युलोक और सूर्य का पारस्परिक सम्बन्ध है। जब द्युलोक और सूर्य दोनों तृप्त हो जाते हैं तो प्रजा, पशु, प्राणि, अन्न आदि सभी तृप्त हो जाते हैं। सर्वत्र कान्ति, तेज या प्रसन्नता का साम्राज्य हो जाता है। अब चुप कर मेरा दिमाग मत खा।

"गुरुजी, यदि मैं आपका दिमाग न खाऊँ तो ये प्रश्न मेरा दिमाग खा जायेंगे।"

"अच्छा, पूछ, क्या पूछना है?"

व्यानाय स्वाहा

"गुरुजी, हम यज्ञाग्नि में आहुति देते हुए कहते हैं—**'व्यानाय स्वाहा'** इससे व्यान (वायु) की तृप्ति होती है। व्यान के तृप्त होने पर क्या होता है?"

"सुनो, **'व्याने तृप्यति श्रोत्रं तृप्यति'** अर्थात् व्यान की तृप्ति होने पर श्रोत्र (कर्णेन्द्रिय) तृप्त होते हैं।"

"श्रोत्रों के तृप्त होने पर क्या होता है?"

"तेरा सिर, श्रोत्रों के तृप्त होने पर चन्द्रमा तृप्त होता है—**'श्रोत्रे तृप्यति चन्द्रमा तृप्यति।'**

"चन्द्रमा के तृप्त होने पर क्या होता है?"

"चन्द्रमा के तृप्त होने पर दिशाएँ तृप्त होती हैं —**'चन्द्रमसि तृप्यति दिशस्तृप्यति'**

"बुद्धि के दुश्मन, तू मेरा पिंड नहीं छोड़ेगा। जब चन्द्रमा और दिशाएँ दोनों तृप्त हो जायेंगे तो संसार में प्रजा, पशु, अन्न, तेज, या ब्रह्म तेज सबको तृप्ति मिल जायेगी।

अपानाय स्वाहा

"गुरु जी यदि 'अपानाय स्वाहा' मंत्र का उच्चारण करके आहुति देने पर अपान तृप्त होता है तो अपान के तृप्त होने पर क्या होता है?"

"अपान के तृप्त होने पर वागिन्द्रिय (वाणी) तृप्त होती है।"

"और वाणी के तृप्त होने पर?"

"वाणी के तृप्त होने पर अग्नि को तृप्ति मिलती है। अग्नि का तेज वाणी में प्रतिभासित होता है।।

"अग्नि के तृप्त होने पर क्या होता है?"

"अग्नि के तृप्त होने पर पृथ्वी को तृप्ति मिलती है। आखिर अग्नि पृथ्वी में ही वास करती है।"

"पृथ्वी के तृप्त होने पर?"

"पगले! पृथ्वी और अग्नि को अलग करके कैसे देखा जा सकता है। इन दोनों के एक साथ तृप्त होने पर प्रजा, पशु, अन्न, तेज, ब्रहम तेज आदि सभी को तृप्ति मिलती है।

समानाय स्वाहा

"समान (वायु) के लिए आहुति देने पर या समान वायु की तृप्ति होने पर क्या होता है?"

"समान की तृप्ति होने पर मन को तृप्ति मिलती है?"

"और मन के तृप्त होने पर?"

"मन के तृप्त होने पर पर्जन्य (मेघ) को तृप्ति मिलती है।"

"पर्जन्य के तृप्त होने पर?"

पर्जन्य के तृप्त होने पर विद्युत् को तृप्ति मिलती है।

"तब, क्या होता है गुरु देव?"

पर्जन्य और विद्युत् दोनों अन्योन्याश्रित हैं, एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों तृप्त होने पर, तू भी कुछ बोल दिया कर भोंदू विलास।"

"हाँ, याद आया गुरुदेव! पर्जन्य और विद्युत् के तृप्त होने पर, प्रजा, पशु, अन्न, तेज, ब्रह्म तेज आदि सभी तृप्त हो जाते हैं। गुरुजी, अब तो मैं भी बुद्धिमान हो गया हूँ।"

"अब, मेरा दिमाग मत खा।" गुरुजी, खीझ कर बोले।

"बस गुरुजी, एक प्रश्न और?" शिष्य गिड़गिड़ाया।

"अच्छा पूछ"

उदानाय स्वाहा

"गुरुजी, इतना बता दीजिए कि उदान के तृप्त होने पर क्या होता है?"

"उदान के तृप्त होने पर त्वचा तृप्त होती है।"

"त्वचा के तृप्त होने पर क्या होता है?"

"त्वचा के तृप्त होने पर पवन तृप्त होती है।"

"और पवन (वायु) के तृप्त होने पर आकाश तृप्त होता है।"

"और आकाश के तृप्त होने पर?"

"आकाश और वायु का घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक के तृप्त होने पर दूसरा स्वतः तृप्त हो जाता है और उसके बाद?"

"आगे में बोलूँगा गुरुजी। आकाश और वायु के तृप्त होने पर प्रजा, पशु, अन्न, तेज, ब्रहम तेज आदि सभी तृप्त हो जाते हैं। गुरुजी, एक प्रश्न तो छूट ही गया, क्या पूछ लूँ?"

"बेटा, मैं चलता हूँ। अब मेरा दिमाग काम नहीं कर रहा है। ऐसा शिष्य किसी को न मिले।" इतना कह कर गुरुजी तेज कदमों से बाहर निकल गये।

"गुरुजी! गुरुजी!" शिष्य चिल्लाता ही रह गया।

230 आर्य वानप्रस्थ आश्रम
ज्वालापुर (हरिद्वार)
मो. 9639149995

☞ पृष्ठ 04 का शेष

मानव-निर्माण में ...

प्राप्ति में अहर्निश लगे रहना, आचार्य की अच्छी बातों को मानना, बुरी बातों को नहीं मानना, क्रोध न करना, झूठ मत बोलना, **सत्यमेव जयते नानृतम्**—सत्य की ही विजय होती है, झूठ की नहीं, ब्रह्मचर्य का पालन करना, हर प्रकार के अति को छोड़ देना, बुद्धि को मलीन करने वाली वस्तुओं का सेवन मत करना, आहार—विहार संयमित रखना, विद्योपार्जन में सदा लगे रहना, सुशील बनना, सभ्यता, सीखना—इस प्रकार का पवित्रतम व जीवनोपयोगी उपदेश स्वयं माता—पिता अपने बच्चों को दिया करते थे।

इस सारगर्भित उपदेश की आज के शिक्षणालयों में अत्यन्त महत्वपूर्ण आवश्यकता है। प्रत्येक माता—पिता अपने बच्चों को ऐसे ही गुणों से ओत—प्रोत देखना चाहते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन का सारभूत तत्त्व यही है कि उन प्राचीन नैतिक मूल्यों का आज के परिप्रेक्ष्य में भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। आज के सभी शिक्षणालयों का एक ही उद्देश्य है—बालक का सर्वांगीण विकास। उसे एक समर्पित राष्ट्र—भक्त बनाना।

यदि आज के शिक्षाशास्त्री उन प्राचीन वैदिक मूल्यों की ओर ध्यान प्रदान कर, उन सूत्रों को आज की शिक्षा प्रणाली में स्थान दे पाएँगे तो अवश्य ही राष्ट्र का कल्याण हो सकता है, गरीबी, अमीरी के भेदभाव को मिटाया जा सकता है, भाषावाद, प्रान्तवाद, जातिवाद, ऊँचता—नीचता की खाई को भरा जा सकता है।

इसमें कोई विवाद का विषय नहीं होना चाहिए कि आप क्या पढ़ा रहे हैं। सब प्रकार का ज्ञान—विज्ञान बच्चों को अवश्य पढ़ाया जाए, किन्तु इसके साथ—साथ मानवीय गुणों की अवहेलना नहीं की जानी चाहिए। बालक का सर्वांगीण विकास। सच्चे अर्थों में मानव बनने का संकल्प, व्रत, प्रतिज्ञा लेने वाले बनें।

सरलता, समानता, सामीप्यता इत्यादि गुणों के समुचित विकास के साथ—साथ समाज में, राष्ट्र में एकरूपता एवं समरसता का संचार अवश्य होगा। सबको शिक्षा—प्राप्ति का समान सुअवसर मिले। सब दिशाओं में सर्वांगीण विकास करें। **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** का मार्ग प्रशस्त होगा। इस प्रकार राष्ट्र फिर से उस प्राचीन गौरवोक्ति को कह उठेगा—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं—स्वं चरित्रं शिक्षरेन्
पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

खालसा महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

भगवान् हमें सद्बुद्धि दे

● प्रो. रामप्रसाद वेदालंकार

ओ३म् भूर्भुवः स्वः।
तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।।
यजु. 3.35।।यजु. 36.3।।ऋ. 3.62.10।।

अन्वयः–ओ३म् भूः भुवः स्वः। **(वयम्) सवितुः देवस्य (यत्) वरेण्यं भर्गः, तत् धीमहि। यः, नः धियः प्रचोदयात्।**

अन्वयार्थः–(ओ३म् भूः भुवः स्वः) जो सब का रक्षक है, प्राणाधार है, दुःखविनाशक और सुख का देने वाला है। ऐसे **(सवितुः देवस्य {यत्} वरेण्यं भर्गः)** सकल संसार के स्रष्टा एवं प्रेरक दिव्य गुणों के भण्डार परमेश्वर का जो शुद्धतम वरण करने योग्य, पापों को दग्ध करने वाला तेजःस्वरूप है **(तत् धीमहि)** उसका हम ध्यान करें वा धारण करें, **(यः, नः धियः प्रचोदयात्)** अब जो उपर्युक्त स्वरूप वाला है, वह हमारी बुद्धियों को, हमारे कर्मों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करे।

'ओ३म् उस परमपिता का मुख्य नाम है। **{"तज्जपस्तदर्थभावनम्।" योग. 1.28}** साधक जन–उपासक जन प्रभु के इस ओ३म् नाम का बड़ी श्रद्धा, भक्ति से जप करते हैं और साथ–साथ इसके अर्थ की भावना भी करते हैं। इस एक ओ३म् शब्द के अनेक अर्थ हैं, इतने कि जिनमें परमेश्वर के सभी गौणिक नाम–गुणवाचक नाम समा जाते हैं। हम यहाँ उन सभी अर्थों को न भी ग्रहण करें तो भी उन सभी अर्थों में से प्रथम अर्थ–**"अवति रक्षतीति ओ३म्"**–वह सब की रक्षा करता है, इसलिए 'ओ३म् उसका नाम है।" यह शब्द अपने में पर्याप्त सार समेटे हुए है। वह परमेश्वर सब प्रकार से हमारी रक्षा करता है। यदि वह हमारी रक्षा न करता होता, हमारा सब प्रकार से ध्यान न रखता होता, तो मातृगर्भ में पड़े–पड़े हमारी क्या दशा होती? क्या हम सब प्राणी इतने विकास को कभी प्राप्त कर पाते ? फिर कौन नर, कौन नारी, कौन वैद्य, कौन हकीम, कौन डाक्टर यह कह सकता है कि "मैं उस एक बूँद से धीरे–धीरे इस सुन्दर शरीर, इस अनुपम देह, इस चमत्कृत काया का निर्माण कर रहा हूँ।" अर्थात् कोई नहीं कह सकता। फिर कौन यह जान सकता है और बता सकता है कि भीतर बनने वाला बालक है वा बालिका है, नर है वा मादा है ? फिर वह अन्धा है, बहिरा है, लूला है, लंगड़ा है या बिल्कुल ठीक–ठाक है। यह सब भी कौन जान सकता है ? यह सब कुछ तो केवल एक वही जान सकता है जो कि सर्वव्यापक प्रभु निरन्तर उसको बना रहा है और उसकी रक्षा–सुरक्षा का अनवरत प्रबन्ध कर रहा है। उसके अंग–प्रत्यंगों को निरन्तर उसके कर्मों के आधार पर ही विकसित कर रहा है। कर्मों के ही आधार पर उसकी जाति, आयु और भोग की व्यवस्था कर रहा है। सभी हृदय से यह अनुभव करते हैं कि वह कोई विलक्षण ही दिव्य सत्ता है जो भीतर ही भीतर रचना भी कर रही है और उसकी रक्षा भी कर रही है। वह बालक बाहर आया नहीं कि माँ के स्तनों से उस बालक के लिए दूध झरने लगा। उसको प्यास लगी कि पानी उसके सामने उपस्थित होने लगा। फिर उस बालक के दाँत आए नहीं कि नानाविध खाद्य पदार्थ उसके सम्मुख आने लगे। यह सब व्यवस्था उसी सर्वरक्षक प्यारे प्रभु ने ही तो कर रखी है। कौन है दूसरा ऐसा जो यह कहने का भी साहस कर सके कि "यह सब क्रिया–कलाप मैं ही कर रहा हूँ ?" इसलिए वही प्रभु रक्षक है, सब का संरक्षक है।

वह 'ओ३म्, प्रभु रक्षक ही नहीं वरन् **'भूः'** भी है, भी प्राण है, प्राण का भी प्राण है। अर्थात् हमें अनुप्राणित करने वाला भी वही परमेश्वर ही है। यदि वह **भूः**–प्राणस्वरूप न होता तो कौन इस जड़ देह में प्राण फूँक कर इसको अनुप्राणित कर पाता? फिर जिस दिन, जिस घड़ी, जिस क्षण वह इस शरीर में से अपनी न्याय व्यवस्था के अनुसार प्राणों को समेट लेता है, उसी दिन, उसी घड़ी, उसी क्षण से यह शरीर निश्चेष्ट जड़ रूप होकर रह जाता है और सभी बन्धु–बान्धव, सखा–मित्र, अपने–पराए, निर्बल–बलवान्, ज्ञानी–अज्ञानी स्तब्ध से रह जाते हैं, खड़े के खड़े से ही रह जाते हैं। उस समय सब बहुत कुछ हाथ–पैर पटकते हैं, रोते–करलाते भी हैं। हाय–तोबा भी करते हैं, पर अन्त में यही सब कुछ कह के रह जाते हैं कि उसकी व्यवस्था में कौन दखल दे सकता है ? उसके सामने भला किसकी दाल गल सकती है? उसके सम्मुख भला किसकी चल सकती है ? अतः उसी की शरण में जाकर सब नमस्कार करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि–**'हे प्रभुवर ! यह तो सत्य है कि तूने अपनी न्याय–व्यवस्था से ही यह कष्ट दिया होगा, पर अब जब यह कष्ट दिया है तो अपनी अपार कृपा से धीरज भी तो तू ही दे, ढाढ़स भी तू ही बन्धा, असह्य घाव किया है तो मर्हम भी तो अब तू ही लगा।'** इस प्रकार वह कर्मानुसार मनुष्य को अनुप्राणित भी करता है और अन्त में वह प्राणों को समेट भी लेता है। इस प्राण से प्राणी को अनुप्राणित करने के कारण से ही उसे यहाँ **{भूरिति वै प्राणः। (तै.उ.) यः प्राणयति सर्वान् प्राणादपि प्रियस्वरूपो वा।।}** **'भूः'** कहा गया है, प्राण कहा गया है, प्राणाधार कहा गया है, प्राण का भी प्राण–प्राणप्रिय कहा गया है।

इतना ही नहीं उसे **{भुवरित्यपानः। (तै.उ.)। अपनयति दुःखमित्यपानः।}** **'भुवः'** भी कहते हैं। वह **'भुवः'** अर्थात् दुःखविनाशक भी है। उस प्रभु को देखो, हमारे दुःखों को वह कैसे दूर करता है। जैसे हमें भूख लगती है, प्यास लगती है, तो हमारी इस बुभुक्षा और पिपासा–इस भूख और प्यास को यदि वह दूर नहीं करना चाहता तो भला क्यों वह इस जगत् में हमारे लिए अन्न और जल की भरपूर व्यवस्था करता ? यदि वह हमारे शरीर में विद्यमान रहनेवाले प्राणों को निरन्तर न बचाये रखना चाहता तो भला कैसे वह इस प्राणवायु का दान देता ? यदि वह हमें अन्धकार में होने वाले कष्टों से अर्थात् ठोकर खाने वा गर्त में गिरने आदि–आदि से न बचाना चाहता होता तो भला कैसे वह इन दिव्य दो प्रकाश–कन्दों की–दो अद्वितीय बड़े बल्बों की, अर्थात् इस सूर्य और चन्द्र की व्यवस्था क्यों करता ? यदि वह हमें अकर्मण्यता के दुःख से न बचाना चाहता तो कर्मठता के लिए दिवस क्यों बनाता? अगर वह हमारी थकान को नहीं हरना चाहता तो वह हमारे विश्राम के लिए भला रात्रि क्यों बनाता ? यदि वह हमारे आन्तरिक दुःखों–आभ्यन्तरिक कष्टों को दूर न करना चाहता होता तो हम काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष आदि की अग्नि में निरन्तर जलते–भुनते हुओं को वह दिव्य वेदज्ञान क्यों देता? यदि वह हमारे पारिवारिक, सामाजिक कष्टों को दूर न करना चाहता तो तत्सम्बन्धी दिव्य उपदेश एवं दिव्य शिक्षाएँ वेदों में क्यों कर प्रदान करता आदि–आदि ? यह सब कुछ देख कर यही प्रतीत होता है कि वह प्रभु निरन्तर हमारे दुःख दूर करना चाहता है और करता भी रहता है। यहाँ तक कि यदि वह "मृत्यु" भी हमें प्रदान करता है जो बाहर से हम सब को बड़ी कष्टप्रद प्रतीत होती है तो उसमें भी उसका अभिप्राय यही होता है कि हम अपनी उस अवस्था से अधिक सुखी हो जायें क्योंकि उस समय यह जीव इस जीर्ण–शीर्ण शरीर में न अच्छी प्रकार से चल–फिर सक रहा होता है, न ही अच्छी तरह से कुछ खा पी रहा होता है, न ही अच्छी तरह कुछ बोल–चाल रहा होता है। न ही भली–भाँति कोई काम–काज कर रहा होता है तो ऐसी स्थिति में इस चोले को बदल ही डालने में इसका सुख है। यह विचार कर ही हमारे पुराने जीर्ण–शीर्ण शरीर रूपी वस्त्र को उतार कर वह हमें नवीन शरीर रूपी वस्त्र प्रदान करता है। फिर भी उस अबोध बालक के समान उस परम माँ के अभिप्राय को न समझकर हम रोवें, जो कि हमारे पुराने गन्दे वस्त्र बदलकर हमें नये वस्त्र पहनाना चाह रही होती है तो इस में हमारी ही कमी है–हमारी ही मूर्खता है। उस प्यारे प्रभु की उस परम प्यारी माँ की कोई कमी नहीं है।

वह **'ओ३म्'** प्रभु केवल **'भूः, भुवः'**–प्राणाधार और दुःख विनाशक ही नहीं है, वरन् वह **'स्वः'** स्वयं सुखस्वरूप भी है और सब को सुख प्रदान करने वाला भी है। इस सुख की प्राप्ति के लिए **"स्वरिति व्यानः–व्यानयति चेष्टयतीति व्यानः।"** वह सब को निरन्तर सचेष्ट करता रहता है। अब जब वह ऐसे सुख के अभिलाषी व्यक्तियों को देखता है और उस अभिलाषा के अनुरूप उनको प्रयत्न करते हुए भी देखता है तो फिर वह सुखस्वरूप प्रभु उनकी पात्रता के अनुसार ही उनके प्रति सुखों का स्रोत भी बहा देता है। यदि वह हम सब को सुख न देना चाहता होता तो फिर वह नाना प्रकार के इन सुख–सौभाग्य के साधन हमारे लिए क्यों जुटाता रहता ? संसार के इन सुखमय नाना प्रकार के पदार्थों की रचना से तो यही ज्ञात होता है कि वह हमें सब प्रकार से सुखी करना चाहता है पर अगर उन्हीं पदार्थों का दुरुपयोग करके हम स्वयं ही उनसे दुःख उठाने लगें तो यह बात पृथक् है। उस प्रभु ने तो सात्त्विक अन्न जौ, अंगूर, गन्ने आदि सुन्दर–सुन्दर सुखप्रद पदार्थ हमें सुख प्रदान करने के लिए ही बनाये हैं पर अगर हम ही उनको सड़ा–सड़ा कर और उनकी शराब बना–बना कर,

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

गतांक से आगे...

गीता और महर्षि दयानन्द

● अमर स्वामी

(30) इसी ग्रन्थ के पृष्ठ 471 पर महाराजा जोधपुर के नाम ऋषि ने एक श्लोक महाभारत का, तीन गीता के और दो श्लोक मनुस्मृत्ति के दिये हैं। गीता के श्लोक ये हैं।

1. विषयेन्द्रियसंयोगाद् यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव, तत् सुखं राजसं स्मृतम्।।
— गीता 18—38

2. यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते, लोकस्तदनु वर्तते।।
— गीता 3—21

3. यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्।।
—गीता 18—37

इनका अर्थ इस प्रकार है

1. विषय और इन्द्रियों के संयोग से जो आरम्भ में प्रतीत होता है पर परिणाम में विष के तुल्य होता है वह रजोगुणी सुख अमृत के समान कहा गया है।

2. श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरण करता है उससे छोटा भी वह वह काम करता है। वह श्रेष्ठ पुरुष जिसको प्रमाण करता है लोक उसके अनुसार वर्तता है।

3. जो आरम्भ में विष के तुल्य लगता है पर अन्त परिणाम में अमृत के समान होता है। वह सुख सत्त्व गुण युक्त कहा गया है। वह आत्मा और बुद्धि की प्रसन्नता को उत्पन्न करता है। वह प्रसाद का देने वाला है।

इस पत्र पर पत्र लिखने की तिथि नहीं है अनुमान किया गया है कि यह पत्र मास जौलाई सन् 1883 में लिखा गया है और ऋषि दयानन्द जी महाराज का देहावसान इसी सन् की 30 अक्टूबर को हुआ। इस प्रकार यह पत्र ऋषि की मृत्यु से लगभग चार मास पहिले लिखा गया प्रतीत होता है।

इन सब उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द जी कार्य क्षेत्र में उतरने से आरम्भ करके मृत्यु पर्यन्त अपनी पुस्तकों में, अपनी बातचीत में और पत्र व्यवहार में भी गीता के श्लोकों का प्रयोग करते रहे। गीता पर उठने वाली शंकाओं का समाधान करते रहे, उसके अर्थों की उलझनों को सुलझाते रहे। गीता की सरल, सरस और मनोहारिणी कथायें भी करते रहे। मृत्यु पर्यन्त गीता के श्लोकों का प्रयोग उन्होंने नहीं त्यागा। ऐसी स्थिति में यह कहना कि—'वह गीता को त्रिदोष का सन्निपात कहते थे' ऋषि के ऊपर मिथ्या दोषारोपण करना है।

गीता—शत्रुओं के तीन महाप्रमाण—

(1) महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र प्रथम भाग पृष्ठ 203 और 204 पर संवत् 1927 मार्गशीर्ष मास में जिला बुलन्दशहर के अहार ग्राम के पास ग्राम चासी में निवास करना बताया गया है वहाँ यह लिखा है कि—

"कहते हैं कि—ग्रन्थों के प्रामाण्याप्रामाण्य विषय में उनका किन्हीं अंशों में मत परिवर्तन हो गया था। भगवद्गीता को त्रिदोष का सन्निपात बतलाते थे और कहते थे कि उसमें कहीं तो जीव ब्रह्म का एकत्व प्रतिपादन किया गया है और कहीं उनका पृथकत्व देखने में आता है और कहीं प्रकृति और पुरुष का पृथकत्व माना गया है। प्रचलित मनुस्मृति को वे मनु संहिता नहीं मानते थे और उसे भृगुसंहिता कहते थे।

यह लेख पं. देवेन्द्रनाथ जी मुखोपाध्याय का है, यहाँ यह नहीं बताया कि ऋषि ने यह किसको कहा था कि गीता त्रिदोष का सन्निपात है तथा देवेन्द्रनाथ जी को यह बात किसने बतायी। गीता और मनुस्मृति सम्बन्धी दोनों बातें सर्वथा असत्य और मन घढ़न्त हैं। संवत् 1927 में मनुस्मृति को मनुसंहिता नहीं भृगु संहिता बता रहे हैं और संवत् 1932 में 5 वर्ष पीछे संस्कार विधि लिखते हैं जिसमें पौने दो सौ के लगभग श्लोक मनुस्मृति के मनु के नाम से देते हैं भृगुसंहिता के नाम से नहीं।

ऋषि दयानन्द सम्वत् 1939 वि. में सत्यार्थ प्रकाश (पूरे 12 वर्ष के पीछे) लिखते हैं और उसमें पाँच सौ के लगभग श्लोक मनुस्मृति से लेकर मनु के ही नाम से दिये हैं, यहाँ भी भृगु संहिता के नाम से नहीं दिये। यहीं तक नहीं सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास के आरम्भ ही में मनुस्मृति का यह श्लोक लिखा है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः।।
—मनु. 2.2

इसका अर्थ यह है कि—पृथ्वी में रहने वाले सब मनुष्य इस आर्यावर्तीय देश के रहने वाले इस देश में उत्पन्न हुए ब्राह्मणों के पास आकर अपने—अपने कर्त्तव्य कर्मों को सीखें।

इस श्लोक को लिखकर इसके नीचे ऋषि ने लिखा कि—यह मनुस्मृति जो सृष्टि के आदि में हुई है उसका प्रमाण है।

कोई भी गीता शत्रु यह कभी सिद्ध नहीं कर सकेगा कि ऋषि ने मनुस्मृति को कभी भी भृगु संहिता माना था।

मनुस्मृति और गीता के विषय में मान्यता की घोषणा ऋषि ने अपने किसी भाषण में की या किसी व्यक्ति को ऐसा बताया यह कुछ पता नहीं लगता है। यह भी विचारणीय है कि—चासी ग्राम क्या काशी था जो वहीं यह मान्यता प्रकट हुई।

"गीता त्रिदोष का सन्निपात है" यह वाक्य भी ऋषि का प्रतीत नहीं होता है क्योंकि त्रिदोष और सन्निपात दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। त्रिदोष ही सन्निपात है और सन्निपात ही त्रिदोष है। ऋषि दयानन्द जी ने आयुर्वेद के ग्रन्थों का भी पूर्णरूपेण अध्ययन किया हुआ था वे ऐसे वाक्य का प्रयोग कैसे कर सकते थे जैसे कोई अनपढ़ ग्रामीण कहे कि—"यह जल जीरे का पानी है।" जैसे—"पानी का जल या जल का पानी" कहना युक्त नहीं है "इसी प्रकार त्रिदोष का सन्निपात" कहना भी—अयुक्त है इसलिये यह ऋषि का वाक्य नहीं किसी और का ही बनाया हुआ प्रतीत होता है।

जैसे मनुस्मृति को भृगु संहिता मानने की बात मिथ्या है ऐसे ही गीता को "त्रिदोष का सन्निपात" मानने की बात भी मिथ्या है।

यहाँ एक और स्मरण करा देना उचित समझता हूँ कि पीछे संख्या (13) में पढ़िये वहाँ ऋषि के काशी निवास की बात सम्वत् 1937 वि. की लिखी है जो ऋषि के देहावसान से केवल तीन वर्ष पहिले की और चासी ग्राम में गीता को त्रिदोष को सन्निपात बताने वाली बात से 10 वर्ष पीछे की है, क्योंकि चासी की बात 1927 विक्रमी की बताई गई हैं और यह सं. 1937 की। वहाँ गीता पर की गई एक शंका का अत्युत्तम समाधान किया जिससे ऋषि की विद्या और बुद्धि का श्रोताओं पर बहुत प्रभाव पड़ा।

इस पर गीता विरोधियों से पूछता हूँ कि जब इस शंका से 10 वर्ष पूर्व ऋषि ने घोषणा कर दी थी कि गीता त्रिदोष का सन्निपात है तो यहाँ 10 वर्ष पीछे उस पर होने वाली शंका का समाधान क्यों किया? ऋषि ने वही यहाँ भी क्यों न कह दिया कि गीता त्रिदोष का सन्निपात है?

क्या चासी में इसलिये घोषणा की थी कि यह अनपढ़ ग्रामीणों की चासी है और यहाँ इसलिये यह न कहकर समाधान किया कि यह विद्वानों की काशी है? स्पष्ट है कि चासी वाली बात सर्वथा मिथ्या है।

(2) दूसरा महा प्रमाण यह है कि बनेड़ा के राजा साहिब द्वारा गीता के श्लोक बोलकर प्रश्न करने पर ऋषि ने उनको कहा कि हम गीता का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते हैं आपके यहाँ वेद की खूब चर्चा है आप वेद का प्रमाण दीजिये।

यदि यह बात ऐसी की ऐसी ही सत्य भी हो तो भी यहाँ से गीता का स्पष्ट विरोध या निषेध प्रकट नहीं होता है। यदि हमारे सम्मुख कोई व्यक्ति—मनुस्मृति का प्रमाण देकर मांस भक्षण या मृतक श्राद्ध सिद्ध करना चाहे तो हम उसको यह कह सकते हैं कि वेद का प्रमाण दीजिये। हम वेद के सामने मनुस्मृति का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते हैं। वेद स्वतः प्रमाण है, वेद के सामने गीता क्या और मनुस्मृति आदि कोई भी शास्त्र क्या?

और जहाँ वेद की अधिक चर्चा हो वहाँ वेद ही का प्रमाण दिया जाना चाहिये। पर मुझको बनेड़ा वाली यह बात भी बनावटी ही प्रतीत होती है। मेरा ऐसा विचार क्यों है इस पर आगे पढ़िये।

यह गीता का प्रामाण्य स्वीकार न करने वाली बात—श्री देवेन्द्रनाथ जी के लिखे जीवन चरित्र में लिखी है। श्री स्वामी सत्यानन्द जी द्वारा लिखे ग्रन्थ दयानन्द प्रकाश में बनेड़ा का वृत्त इस प्रकार लिखा है—

महाराज ने भी राजा महाशय को कुशल मंगल और योग क्षेम पूछा और कहा कि आप कोई प्रश्न पूछिये। उन्होंने जीव ब्रह्म के विषय में प्रश्न किया, जिसके उत्तर में स्वामी जी ने कहा कि जीवात्मा से ब्रह्म न्यारा है। स्वामी जी ने समझाया कि जैसे आकाश सारे मन्दिर के भीतर फिर बाहर भी परिपूर्ण है परन्तु मन्दिर आकाश से भिन्न ही बना रहता है ऐसे ही परमात्मा जीवात्मा में रमा हुआ है, परन्तु जीव उससे न्यारे ही रहते हैं।

इससे आगे राज पण्डित से महीधर भाष्य पर वार्तालाप की चर्चा है और इससे आगे चक्रांकितों के खण्डन की चर्चा है, गीता के प्रामाण्य स्वीकार न करने की कुछ भी चर्चा नहीं है।

क्रमशः

शास्त्रार्थ—महारथी अमर स्वामी ग्रन्थ संग्रह' में संकलित 'गीता और महर्षि दयानन्द' से साभार
(संपादक—डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री)

ऋषि दयानन्द : मेरी दृष्टि में आप्त राष्ट्र पुरुष

● पं. क्षितीश वेदालंकार

जब आप मेरी दृष्टि की बात करते हैं तब शुरु में ही यह मानकर चलना होगा. कि मेरी दृष्टि की अपनी सीमा है। सूक्ष्म दृष्टि या अन्तर्दृष्टि की तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। पर अपनी ससीम दृष्टि के प्रति भी मेरी ममता है, क्योंकि वह मेरी है। जब तक 'मैं' (अहम्) है, तब मेरी दृष्टि भी है और उसे मैं छोड़ भी नहीं सकता (अ+हम्)। मेरी इस दृष्टि से असहमत होने का आपको पूरा अधिकार है। पर मुझे पहले कहने तो दीजिए कि वह मेरी दृष्टि क्या है ?

जन्म–जन्मान्तर से मनुष्य में मुक्ति की कामना रही है। यह मुक्ति की कामना क्या है और **'स्वतन्त्रः कर्त्ता'** कहकर जीवात्मा को कर्म करने में स्वतन्त्र बताने का तात्पर्य क्या है, इस पर विचार करें तो स्वतन्त्रता और मुक्ति परस्पर समानार्थक ही प्रतीत होते हैं। सांख्यदर्शन के अनुसार **'अथ त्रिविध–दुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः'**– अर्थात् आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक इन तीनों प्रकार के दुःखों से अत्यन्त निवृत्ति ही मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य है। न्यायदर्शन के अनुसार **'बाधनालक्षणं दुःखमिति तदत्यन्त विमोक्षोपवर्गः'**–बन्धन ही दुःख का कारण है और उसकी अत्यन्त निवृत्ति ही मोक्ष है, अपवर्ग है। स्वतन्त्रता भी तो बन्धन से निवृत्ति ही है। इस तथ्य के आलोक में ऋषि दयानन्द ने आत्मिक, शारीरिक तथा सामाजिक उन्नति को, धर्म, अर्थ तथा काम की सिद्धि को ही मोक्ष एवं स्वतन्त्रता का परिचायक माना है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अर्थात् समाज की एक इकाई है। व्यष्टि से समष्टि का निर्माण होता है। व्यक्ति से समाज और समाज से राष्ट्र–यह इकाई, दहाई, सैकड़े का ही खेल है, अन्य कुछ नहीं। व्यक्ति के मूल में आत्मचेतना है, वह आत्मचेतना ही विकसित होते हुए सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना तक और अन्त में विश्व चेतना तक पहुँचती है। यही **'एकोऽहं बहुस्याम्'** है।

ऋषि दयानन्द अद्भुत आत्मचेतना सम्पन्न व्यक्ति थे, यह उनके बालजीवन से ही प्रकट हो जाता है। इस आत्मचेतना का प्रथम विस्फोट बालक मूलशंकर की 14 वर्ष की आयु में सन् 1838 की शिवरात्रि के उपवास की उस घटना से मुखर होता है जो सर्वप्रसिद्ध है। उस घटना को यहाँ दोहराने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह सबकी परिचित है। न जाने कितनी सदियों से उस रूप में शिव की जड़ पूजा चली आ रही थी, पर बालक के मन में सहज जिज्ञासावश यह प्रश्न उठा कि क्या यही सच्चा शिव है जो अपने सिर पर से, उछल–कूद मचाते, नैवेद्य और मिष्ठान्न खाते, छोटे–छोटे मूषकों को भी नहीं हटा सकता ? शिव तो असीम शक्तिधारी और त्रिपुर–संहारी कहे जाते हैं। यह शिव तो वैसा नहीं लगता। यह प्रश्न था जिसने बालक के जिज्ञासु मन को झकझोर दिया। कवि ने कहा है–

प्रश्न हूँ, उत्तर नहीं हूँ।
प्रश्न, क्योंकि मैं नश्वर नहीं हूँ।।

प्रश्न चिरन्तन है, उत्तर क्षणस्थायी है। सदियों से किसी ने ऐसा प्रश्न नहीं किया था। समस्त ज्ञान–विज्ञान की खोज के मूल में यही प्रश्न तो है–ऐसा क्यों ? प्रश्न नहीं तो उत्तर भी नहीं। ऐसे पारस पत्थर की खोज करते–करते ही, जिसके स्पर्श से लोहा सोना बन जाए, मानव इतनी विराट वैज्ञानिक उन्नति के शिखर तक पहुँच गया। मानव–मन प्रश्न करता गया, उनके उत्तर खोजता गया, वैज्ञानिक उन्नति होती गयी, उत्तर मिलते गये और मिटते गए, पर प्रश्न अंगद का पाँव जमाए फिर खड़ा है–ऐसा क्यों, और मनुष्य अब पृथ्वीलोक से उठकर अन्तरिक्ष लोक के अवगाहन में जुटा है और नित्य नए–नए तथ्य सामने आते जा रहे हैं। ज्ञान अनन्त है तो उसकी खोज का भी अन्त नहीं।

फिर शंकर के मूल का अनुसन्धान करते बालक मूलशंकर के मन में 14 वर्ष की आयु में उठा प्रश्न क्या यों ही क्षणिक उत्तरों से विलीन हो जाता। उसने तो सारे जीवन को दाँव पर लगा दिया। 14 वर्ष की आयु **'लालयेद् पंचवर्षाणि'** वाली आयु नहीं है, **'दशवर्षाणि ताडयेद्'** वाली आयु भी नहीं है। बालक के पहले पाँच वर्ष माँ की ममता से भरे हैं, तो अगले पाँच वर्ष पिता के कठोर अनुशासन के–जिसमें यदा–कदा ताड़न भी अस्वाभाविक नहीं है, पर दस वर्ष की आयु के बाद तो अगला सोपान **'प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्'**– 16 वर्ष की वह आयु ही है जब पिता को भी पुत्र के साथ मित्र की तरह आचरण करने का विधान है। अभी 16वें वर्ष तक पहुँचने में दो वर्ष की कसर है, पर शरीर, मन और मस्तिष्क का तीव्र गति से विकास प्रारम्भ हो चुका है। इस सन्धि–वेला में, किशोरावस्था की देहली पर, बालक के मन में प्रश्न उठता है कि क्या यही सच्चा शिव है।

इस आयु में उठे प्रश्नों का और जिज्ञासाओं का यदि उचित समाधान न मिले तो वह कितना विप्लवकारी बन सकता है, यह हरेक मनुष्य अपने अनुभव से जानता है, क्योंकि हममें से हरेक उस आयु से गुजर कर आया है। बालक मूलशंकर के प्रश्न का भी क्षणस्थायी उत्तरों से समाधान नहीं हुआ और अन्त में 22 वर्ष की आयु होते–होते, जब माता–पिता सत्य की खोज को विवाह के हिरण्मय पात्र से ढकने का प्रयत्न करके उस प्रश्न को सदा के लिए समाप्त कर देना चाहते थे, तब मूलशंकर शंकर के मूल को खोजने के लिए घर से निकल पड़ा–अनन्त की ओर। तो यह था उसकी आत्मचेतना का प्रथम प्रबल विस्फोट।

पर क्या सामाजिक चेतना और राष्ट्र–चेतना भी प्रकारान्तर से आत्मचेतना का विकास ही नहीं है? जितनी तीव्र आत्मचेतना, उतनी ही तीव्र समाज–चेतना और उतनी ही तीव्र राष्ट्र–चेतना भी। पर हम नाना प्रकार के हिरण्मय आवरणों से उन चेतनाओं के विकास को अवरुद्ध करने का प्रयत्न करते रहते हैं और प्रायः वे अवरुद्ध हो भी जाती हैं, नहीं तो आप में से भी न जाने कितने और दयानन्द पैदा हो जाते। मेरा निवेदन यह है कि आत्मचेतना के प्रबल विस्फोट की द्योतक शिवरात्रि की उक्त घटना में भी सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना का अंकुर छिपा था। आप पूछेंगे कैसे?

शिव का रूपक

पौराणिक मण्डली में शिव के जितने रूपों का वर्णन किया जाता है, आप उन पर विचार करके देखिये, तो वे निरे रूपक नजर आएँगे। भला कभी कोई ऐसा व्यक्ति भी हो सकता है जो सदा कैलाश पर्वत के बाईस हजार फुट ऊँचे शाश्वत हिमाच्छादित शिखर पर निवास कर सके। मैंने स्वयं कैलाश और मानसरोवर की यात्रा की है, सो प्रत्यक्ष दर्शन के आधार पर कह सकता हूँ कि वहाँ न कोई शिव का मन्दिर है, न ही कोई शिव की मूर्ति है। इस प्रकार के शरीरधारी व्यक्ति के अस्तित्व का तो प्रश्न ही नहीं। हाँ! अब भक्त लोग यह कहते हैं कि पूरा कैलाश शिखर ही शिवलिंग के सदृश है। पर यह भी केवल कल्पना–विजृम्भण मात्र है। फिर शिव के सिर से गंगा निकलती है। क्या यह भी कभी सम्भव है, या यह सृष्टि नियम के अनुकूल है ? गंगा गंगोत्री और गोमुख से निकलती है, कैलाश पर्वत से नहीं, कैलाश और गंगोत्री में सैकड़ों मीलों की दूरी है–यह प्रत्येक भूगोलवेत्ता जानता है। मानसरोवर से सतलुज (शतद्रु) और कैलाश शृङ्खला से सिन्धु और ब्रह्मपुत्र अवश्य निकलती हैं। जो प्रत्यक्ष है, उसका अपलाप कोई कैसे कर सकता है ? पर यदि यह सब रूपक है, तो साहित्यिक दृष्टि से शिव सम्बन्धी समस्त पौराणिक वर्णन सत्य है, मिथ्या नहीं। संस्कृत साहित्य में एक श्लोक आता है जिसमें शिव के साङ्गोपाङ्ग रूप का वर्णन इस प्रकार है–

पिनाक–फणि–बालेन्दु–भस्म–
मन्दाकिनीयुता।
पवर्गरचिता मूर्तिरपवर्गप्रदास्तु नः।।

पवर्ग में 5 अक्षर आते हैं– प, फ, ब, भ, म। इन पाँचों अक्षरों से एक–एक शब्द निर्मित है। प से पिनाक, फ से फणी, ब से बालेन्दु, भ से भस्म, म से मन्दाकिनी। पिनाक यानी शिवजी का धनुष, फणी यानी साँप–जो शिवजी गले में धारण करते हैं। बालेन्दु यानी दूज का चाँद जो शिवजी के मस्तक पर विराजमान है। भस्म–जिसे शिवजी अपने सारे शरीर पर रमाते हैं। मन्दाकिनी यानी गंगा–जो शिवजी के सिर से निकलती है। इस प्रकार पिनाक, फणी, बालेन्दु, भस्म और मन्दाकिनी इन पाँचों के आद्य अक्षरों से अर्थात् प फ ब भ म से–पवर्ग–जो मूर्ति बनी है वह आपको अपवर्ग प्रदान करे। पवर्ग से बनी मूर्ति भला अपवर्ग कैसे प्रदान करेगी–क्योंकि अपवर्ग का अर्थ होगा–जो पवर्ग नहीं। पर इसमें जो प्रतीपालङ्कार का चमत्कार है, साहित्य के सुधी रसिक जन उसका आस्वादन कर करके सराहेंगे–वाह। पवर्ग रचित मूर्ति अपवर्ग प्रदान करे। क्या सुन्दर उक्ति है, क्योंकि विद्वान्–जन जानते हैं कि अपवर्ग का अर्थ मोक्ष भी है।

क्रमशः

क्षितीश ग्रन्थावली से साभार

गतांक से आगे...

उत्पत्ति का विज्ञान क्या है ?

● श्री हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक'

{श्री हरिश्चन्द्र वर्मा जी के अपनी अनन्त यात्रा पर चले जाने के बाद उनके सुपुत्र द्वारा वर्मा जी द्वारा लिखित लेखों की कुछ अप्रकाशित प्रतियाँ 'आर्यजगत्' को भेजी गई थी। समय–समय पर उस सामग्री को आर्यजगत् के पाठकों को परोसा जाता है। 'उत्पत्ति विज्ञान' पर वर्मा जी का लेख धारावाहिक रूप में प्रस्तुत है।–सम्पादक}

आदिम कालीन मनु जी के सात पुत्र थे, जिनकी एक शाखा में महाराजा सागर, सुखमंजस, विरुत, कद्वीप, भगीरथ, अंशुमान, अनरण्य, नहुष, त्रिशंकु, दिलीप, रघु और अज आदि हुए तथा दूसरी शाखा से सत्यवादी हरिश्चन्द्र, आदि। वैवस्वत मनु के बाद इस सूर्यवंश की उन्तालीस पीढ़ियों के बाद, श्रीरामचन्द्र जी का जन्म, त्रेता के अन्त में लगभग नौ लाख वर्ष पूर्व हुआ था। उस काल के विषय में 'मुण्डक उपनिषद्' में लिखा है कि **मंत्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा सन्तानि। तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके।।** मु उ. 1.2.1।

अर्थात्–वेद मन्त्रों में जिन कर्मों को बड़े–बड़े विद्वानों ने ढूँढ निकाला था, वे कर्म त्रेता में बहुत प्रकार के थे। उन्हीं को हे सत्यकाम! तू कर। यही लोक में सुकृत मार्ग है। वेद के कर्मकाण्ड का बारीक साइन्स, त्रेता में भी विद्वानों ने ढूँढ निकाला था, इसके दो प्रमाण बड़े जबरदस्त मिलते हैं। एक राजा जनक का यज्ञ द्वारा पानी बरसाना। दूसरा–दशरथ का पुत्रोत्पन्न करना, वाल्मीकि ने इन्हीं दोनों बातों का वर्णन करते हुए रामकथा लिखी है। इससे ज्ञात होता है, कि द्वापर में बने हुए उपनिषद् अपने से पहिले साहित्य के श्लोक को उद्धृत करके त्रेता के यज्ञ विज्ञान की बड़ाई करते हैं। उसी जमाने में यज्ञों द्वारा ये दो अलौकिक कार्य देखे जाते हैं।

प्रश्न होता है कि हजरत 'नूह' कौन थे? हम इस सम्बन्ध में 'वैदिक सम्पत्ति' से थोड़ा विषय लिख रहे हैं,

"स्पष्ट है कि हजरत नूह आर्य थे। हजरत नूह का आर्य होना अनेक प्रमाणों से सिद्ध है। नूह का तूफान वैवस्वत मनु की मछली वाली कथा का अनुवाद ही है। नूह के बड़े पुत्र हेम की सन्तति जो मिश्र में रहती है, अपना सम्बन्ध राजा मनु से बतलाती है, अपने को सूर्यवंशी कहती है और मनु वैवस्वत के मूल विवस्वान् सूर्य को अपना इष्ट समझती है। इन मिश्र वालों की ही सन्तति अमेरिका के मूल निवासी बतलाये जाते हैं। वे भी सूर्यवंशी राजा रामचन्द्र का 'राम सीतव' नामी उत्सव मनाते हैं। खोजने वालों को वहाँ भी सूर्य का मन्दिर मिला है। मनु की मछली अर्थात् नूह के जल प्लावन की कथा–मिश्र, बेबिलन, सीरिया, चण्डिया, जुडिया, फारस, अरब, ग्रीस, भारत, चीन और अमेरिका आदि संसार के समस्त देशों में समस्त जातियों में पाई जाती है। इससे यह बात और भी पुष्ट हो जाती है, कि हेम और शेम से ही–नूह–या मनु से ही समस्त मनुष्य जाति की उत्पत्ति हुई है। बाइबिल में जो नूह की पीढ़ियाँ लिखी हैं, वे काल्पनिक हैं। आदम से नूह तक 11 पीढ़ी होती हैं किन्तु इनकी वर्ष संख्या 2262 लिखी हुई है। इसी तरह नूह के पुत्र शेम से इब्राहिम तक 11 पीढ़ी के 1310 वर्ष कहे गये हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है, कि यह गणना विश्वास योग्य नहीं है। हजरत नूह को पैदा हुए लाखों वर्ष हो चुके हैं।"

आगे का विवरण उसी पुस्तक के पृ. 186 में देखिये। आगे पृ. 187 में लिखे हैं "मनु से आर्यों की उत्पत्ति" इसका भी कतिपय विषय निम्न प्रकार हैः–

"वर्ण विभाग होने के पूर्व ही आर्यों के सर्वश्रेष्ठ पुरुषों में से ब्रह्मा और वैवस्वत मनु, अपनी योग्यता के कारण विद्या और शासन के लिये, निर्धारित हो चुके थे। इसीलिये ये दोनों पुरुष अब तक देवतुल्य ही माने जाते हैं। **'ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव'** जिस तरह लिखा हुआ है उसी तरह यह भी लिखा है कि देव, असुर, मनुष्य आदि समस्त प्रजा मनु से ही उत्पन्न हुई है और मनु से उत्पन्न होने के कारण ही वह मानव वंशी अर्थात् मनुष्य कहलाती है।"

मनुना च प्रजाः सर्वाः सदेवासुर मानुषाः।
सृष्टव्याः सर्वलोकाश्च यन्नें गति यच्वेंगति।
(महा. वन.)

धर्मात्मास मनुर्धीमान्यन्त्रवंशः प्रतिष्ठितः।
मनोर्वंशोमानवानां ततोऽयं प्रथितोऽभवत्।।
(महा. आदि.)

महाभारत काल के पूर्व से, शंख, मोती आदि रत्नों को आर्यों ने खोज निकाला था। खनिज धातुओं एवं स्थूल रूप में अस्त्र–शस्त्रों का निर्माण हो चुका था तथा हाथी, घोड़े– और गौवों का पालन किया जाता था। तात्पर्य यह कि जब वेद करोड़ों वर्ष पहिले से है, तब कैसे कहा जा सकता है कि हाथी पहिले सूअर जैसे प्राणी से विकसित हुआ था। छिपकली और मकड़ी आज करोड़ों वर्ष पहिले जैसे थे, वैसे ही आज भी हैं, उनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। यह डार्विन का विकाशवाद बिल्कुल निराधार है, क्योंकि किसी ने आजतक वनमानुष से मनुष्य बनते हुए नहीं देखा है। जो जैसा था हैं वह आज भी वैसा ही है, जैसे–भृंगी, तितली आदि।

महाभारत के बाद कलयुग का प्रारम्भ हो गया। जैसे पहिले ऋषियों की बात सच्ची मानी जाती थी, वैसे ही आज वैज्ञानिकों की सच्ची मानी जाती है (इन दोनों में कोई खास भेद नही है। ऋषियों की दूरदर्शिता आज भी सत्य है। परन्तु इनका (वैज्ञानिकों) केवल भौतिक ज्ञान होने से इनकी खोज में परिवर्तन हुआ करता है, क्योंकि प्रकृति का ज्ञान परिवर्तनशील है)

संस्कृत भाषा का रूप बदलता गया। भाषा में परिवर्तन यहाँ तक हो गया कि आज उसको समझने वाले बहुत कम लोग रह गये हैं, किन्तु उसी संस्कृत के रुपान्तर से सभी देश वाले अपनी–अपनी भाषा बना लिये हैं। आज अंग्रेज़ी भाषा को सर्वोपरि समझा जाता है।

वैज्ञानिकों की समझ में एक बात नहीं आती कि यदि सूर्य–चन्द्रादि और पंचतत्वों एवं उद्भिज की सृष्टि पहिले न हुई होती तो प्राणियों की उत्पत्ति कैसे होती ? इसी प्रकार यदि मानव–उत्पत्ति–काल में ऋषियों द्वारा वेद एवं वेदांग आदि की रचनायें न हुई होतीं तो मानव समाज कैसे ज्ञान का विकास करता। कोई भी जंगली मानव स्वयं ज्ञानी तो हो नहीं सकता। जो मनुष्य हज़ारों वर्ष में आधुनिक विज्ञान का विकास नहीं कर सका, वह कैसे गत 300 वर्ष में ही नये–नये यन्त्रों, मशीनों, यानों, परमाणु बमों, दूरदर्शन, कम्प्यूटर, मोबाईल आदि का निर्माण कर दिया। लगता है भारत में विदेशियों के आवागमन से, 'पुष्पक विमान, महाभारत के शस्त्रों के नाम और भारद्वाज आदि ऋषियों के ग्रन्थों से उन्हें संकेत प्राप्त हो गया होगा। अतः बिना कुछ लक्ष्य कराये, बिना कुछ सूचना दिये–मनुष्य चाहे जितना प्रतिभावान् हो, वह आप ही आप ज्ञानोपार्जन नहीं कर सकता।

मु. पो. मुरारई,
जिला–वीरभूम (प. बंगाल)
{1.7.2008}

☞ पृष्ठ 06 का शेष

भगवान् हमें सद्बुद्धि...

और उसे पी–पी कर दुःख उठाते रहें और अपने घर को बरबाद करते रहें तो इसमें उस प्रभु का क्या दोष है ? उसने तो न जाने हमारे स्वाद सुख के लिए कितने–कितने स्वादिष्ट से स्वादिष्ट पदार्थ दिये हैं, नाना प्रकार के पेय प्रदान किये हैं। देखने को सुन्दर से सुन्दर दृश्य दिये हैं, प्रिय से प्रिय स्थान दिये हैं, पर हम ही उनका दुरुपयोग करके अपने में अति काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष आदि की आग उत्पन्न करके स्वयम् उस अग्नि में जलते, भुनते और झुलसते रहें तो इसमें हमारा ही दोष है, उसका तो नहीं। उसने तो प्रिय से प्रिय और स्वादिष्ट से स्वादिष्ट पदार्थ भक्षण करने को इसलिए दिये हैं कि हम उन्हें खा–खा कर प्रसन्न हों, सुखी हों, तृप्त हों पर अगर हम ही लोभ में आकर अधिक खा–खा कर अपने तन को रोगी बना लेवें तो इसमें उस प्रभु का क्या दोष है? इसी प्रकार अपने कर्मों के आधार पर हमें जो धन–वैभव, स्नेह–सम्मान आदि प्राप्त हो और हम उसमें सन्तोष न करके दूसरों के धन–वैभव आदि को देख–देख कर ईर्ष्या की डाह की अग्नि में जलते रहें तो इसमें फिर वह प्रभु क्या करे ? इतना ही नहीं कि केवल उसने यह सब कुछ हमें प्रदान कर दिया प्रत्युत उसने तो इस सब वैभव का सदुपयोग करने का ज्ञान भी हमें वेदों में प्रदान कर दिया, ताकि हम इस सब धन–वैभव से सुख ही पा सकें।

क्रमशः

'वैदिक सुधा' से साभार

पत्र/कविता

आर्यो सावधान ! Ahvaan के जाल से बचो ! - प्रियांशु सेठ

घोर पौराणिक और वैदिक सिद्धान्त–विरोधी पुरी शंकराचार्य स्वामी निश्चलानन्द का शिष्य जिसका नाम शिवांश नारायण द्विवेदी है–जगह जगह आर्यसमाज मन्दिरों में जाता है और बिना पूर्व सूचना के वहाँ मौजूद लोगों से शास्त्रार्थ के नाम पर बेफिजूल प्रश्न करके उन्हें अपने जाल में फंसाता है। इसके बनाए हथकंडों पर ध्यान दीजिए–

1. जिज्ञासा के नाम पर आपसे सवाल पूछकर हंसी उड़ाना।
2. आर्यसमाज में लोगों के वीडियो बनाना और उसे बिना अनुमति सार्वजनिक करना।
3. उसी वीडियो को कांट–छांट करके उसपर जोक्स, meme आदि बनाना।
4. हर व्यक्ति से एक ही प्रश्न को घुमा–घुमाकर पूछना।
5. अपने YouTube चैनल से आर्यसमाज और स्वामी दयानन्द को गालियाँ देना।
6. आर्यों से शास्त्रार्थ में हार जाने पर उनसे गाली–गलौज और मारपीट करना।

यह व्यक्ति हर आर्य के साथ ऐसे ही पेश आता है। अब आपको इस भगौड़े की हार के नमूने दिखाता हूँ–

1. दिनांक 22 जुलाई 2024 को वैदिक संस्थान ओढव, अहमदाबाद द्वारा इसे आधिकारिक पत्रक में शास्त्रार्थ की चुनौती दी गई किन्तु यह भगौड़ा नहीं आया।
2. दिनांक 1 अगस्त 2024 को गुजरात प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा इसे शास्त्रार्थ हेतु पुनः आमन्त्रित किया गया लेकिन इसने अपना मुंह न दिखाया।
3. दिनांक 23 नवंबर 2024 को आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय, आबूपर्वत ने इसे शास्त्रार्थ हेतु आमन्त्रित किया था लेकिन शंकर परम्परा का यह so-called चेला नहीं आया।
4. दिल्ली में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन 2025 में जब इसे शास्त्रार्थ के लिए आमन्त्रित किया गया था तो इसने न आने की जप–विधि शुरू कर दी।

इसकी सबसे बड़ी कमजोरी यही है कि यह नियमपूर्वक शास्त्रार्थ और लिखित शास्त्रार्थ से दुम दबाकर भागता है। आखिर चेला किसका है! जब गुरु ही शास्त्रार्थ से भागते फिरते हैं तो शिष्य भी तो उन्हीं की परम्परा का पालन करेगा। आखिर–"गुरु–शिष्य परम्परा" को साक्षात भी तो करना है! अब जानिए, इसका इलाज कैसे करना है–

1. प्रथम तो शिवांश द्विवेदी का नंबर 07408301869 अपने फोन में ब्लॉक कर दें।
2. यह जब भी शास्त्रार्थ को बोले तो अपने होश का परिचय देते हुए इसे नियमपूर्वक और लिखित शास्त्रार्थ के लिए आमन्त्रित करें।
3. इसे पूर्व के प्रश्न बदलने को कहें, क्योंकि यह एक ही प्रश्न दस जगह चिपकाता है और उसी के जोक्स बनाता है।
4. शास्त्रार्थ में इसे पराजित करने पर इसकी एक माफीनामा वीडियो भी बनाएँ जिसमें यह आर्यों से क्षमा मांगता दिखे और 24 घण्टे के अन्दर अपने चैनल से सारे आपत्तिजनक वीडियो हटाना कबूल करे।
5. इसे बिना अनुमति के वीडियो सार्वजनिक न करने को कहें। यदि वह ऐसा करे तो कानूनी रूप से Right to Privacy भंग करने का दावा करें।
6. आपके वीडियो पर कांट–छांट करके उपहास या जोक्स बनाने पर Fabricating False Evidence, Defamation, Provocation, Mental Harrasment के तहत अतिशीघ्र कानूनी कार्यवाही करें।
7. यदि यह गाली–गलौज या मारपीट करे तो अविलम्ब स्थानीय पुलिस को सूचित करें और यथायोग्य कार्यवाही करें।

ध्यान रहे, हमें इसके उकसाने में नहीं आना है। बल्कि अपने धैर्य का परिचय देते हुए इसे पराजित करना है। यही हमारी विजय होगी।

{शिवांश के किसी भी उपहास के शिकार आप न हों इसलिए यह लेख आप सबको सावधान करने हेतु लिखा गया है। आगे आप निर्णय लेने में स्वतन्त्र हैं।}

प्रस्तुतकर्त्ता
ब्रह्मचारी राजेन्द्र आर्य
संपर्क : 8851248736

देवतुल्य आर्यसमाज कार्यकर्ता

वे साधारण नहीं
समय की धूल में दबे हुए अग्नि–कण हैं,
जो अवसर पाते ही
युग के अंधकार से टकरा उठते हैं।
न पद की आकांक्षा, न यश का लोभ,
न सम्मान की प्रतीक्षा–
केवल एक व्रत, वेद की वाणी
जन–जन के द्वार तक पहुँचे।

उन्होंने तन दिया
तो जैसे यज्ञ–कुंड में
समिधा स्वयं चलकर उतर गई।
उन्होंने मन दिया
तो जैसे कोई मौन तपस्वी
अपना समूचा ध्यान
समाज के चरणों में रख आया।
उन्होंने धन दिया तो वह दान न था,
स्वार्थ की आहुति थी।

आर्यसमाज का कार्यकर्ता
मार्ग पर चलता नहीं,
वह मार्ग को प्रकाशित करता है।
वह दीप है, जो जलता है,
पर अपने जलने की कथा नहीं कहता।
कभी विद्यालय की दीवारों में
भविष्य गढ़ता है, कभी सेवा–शिविर में
करुणा का स्पर्श बनता है,
कभी सुधार–सभा में
जागरण की वाणी बन उठता है,
और कभी अन्याय के सामने
वज्र–सा अडिग खड़ा हो जाता है।

उसके हाथों में दान नहीं दायित्व होता है।
उसकी आँखों में अहंकार नहीं
ऋषियों का स्वप्न होता है।
उसके श्रम में थकान नहीं
राष्ट्र–निर्माण का तप होता है।
वह पूजा का पात्र बनना नहीं चाहता,
पर उसका जीवन ही पूजा बन जाता है।

वह, नाम, पट्ट पर नहीं लिखवाता,
पर इतिहास की आत्मा
उसका मौन लेखा रखती है।
धन्य है वह मनुष्य, जो अपने लिए कम,
समाज के लिए अधिक जीता है।
धन्य है वह साधक, जो वेद–ज्योति लेकर
अंधकार से संघर्ष करता है।
धन्य हैं देवतुल्य आर्यसमाज कार्यकर्ता
जिनका तन समर्पित, मन समर्पित, धन समर्पित,
और जीवन महर्षि दयानंद के स्वप्नों को समर्पित है।

डॉ. कीर्ति शर्मा
प्रधान, आर्यसमाज
करोल बाग, दिल्ली
मो. 9871277922

☞ पृष्ठ 01 का शेष

सभा का 131वाँ वार्षिक साधारण

प्रशंसा की व इसे सारे देश में प्रभावी रूप से चलाने के लिए सभी का आह्वान किया। पूरे सदन में इस अभियान के सूत्रधार, राष्ट्रीय युवा समाज के अध्यक्ष श्री योगी सूरी का हार्दिक अभिनन्दन किया।

इससे पूर्व ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासना मंत्रों के बाद बल्लभगढ़ की संगीत शिक्षिका श्रीमती संजीवनी कंसल ने मधुर भजनों से वातावरण भक्तिमय बना दिया। विचारणीय विषयों पर चर्चा आरम्भ करने से पूर्व पिछले अधिवेशन के बाद दिवंगत आर्य विभूतियों को श्रद्धांजलि देते हुए शोक प्रस्ताव पारित हुए।

सभा मंत्री ने वर्ष 2025–26 की गतिविधियों का विवरण एवं बजट प्रस्तुत किया, जिसकी सर्वसम्मति से पुष्टि हुई।

उपस्थित प्रतिनिधियों और अधिकारियों से सभा के कार्यों को गतिशील बनाने के लिए सुझाव मांगे गये, जिसमें श्री अरविन्द घई (पंजाब, जालंधर), जे.पी. शूर (पंजाब), श्री विजयपाल (झाँझड़ी), श्री अरुण गुप्ता (बाजार सीताराम दिल्ली) श्रीमती पापिया मुखर्जी (पश्चिम बंगाल), श्री एस.के. झा (बिहार) तथा डॉ. प्रमोद योगार्थी (हिसार) आदि ने मान्य प्रधान जी के नेतृत्व की प्रशंसा करते हुए सभा को अधिक सक्रिय और गतिशील बनाने के सुझाव दिये।

इस अवसर पर आर्य युवा समाज, हरियाणा द्वारा प्रकाशित विवरणाधीन वर्ष में **'नो नशा नेशन अभियान'** को दर्शाती विवरण पुस्तिका **'एक ही सपना, नशा मुक्त राष्ट्र अपना'** का विमोचन हुआ। इसके साथ ही पंजाब उपसभा की विवरण पुस्तिका तथा डॉ. सीमा कंवर (एम.सी.एम. महिला महाविद्यालय चण्डीगढ़) के काव्य संग्रह **'आर्य–पथ–दर्शिका'** का भी विमोचन हुआ।

डी.ए.वी. प्रकाशन विभाग (डी.ए.वी. सी.एम.सी.) ने आर्य साहित्य का स्टाल लगाकर प्रचार किया।

शांति पाठ और सहभोज के साथ कार्यवाही सम्पन्न हुई।

श्री अरविन्द घई

जे.पी. शूर

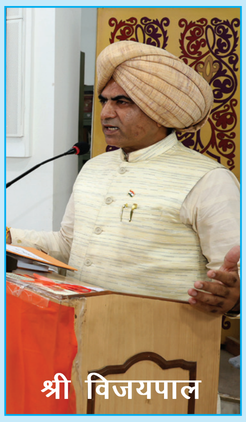
श्री विजयपाल

श्री अरुण गुप्ता

श्रीमती पापिया मुखर्जी

श्री एस.के. झा

डॉ. प्रमोद योगार्थी

सोलन में डी.ए.वी. स्थापना दिवस

आर्य युवा समाज एम.आर. डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, सोलन के तत्वावधान में डी.ए.वी. के 141वें स्थापना दिवस के उपलक्ष्य में **"कण–कण में वैदिक संस्कृति, जन–जन में राष्ट्रभक्ति"** विषय पर कार्यक्रम किया गया।

विद्यार्थियों द्वारा देश भर में डी.ए.वी. संस्थाओं की भूमिका तथा राष्ट्रनिर्माण में उनके अमूल्य योगदान पर आकर्षक प्रस्तुतियाँ दी गई। इन प्रस्तुतियों ने संदेश दिया कि डी.ए.वी. केवल एक शैक्षणिक संस्था नहीं, अपितु वैदिक आदर्शों, नैतिक मूल्यों एवं राष्ट्रभक्ति के संस्कारों का सशक्त केंद्र है।

विद्यार्थियों द्वारा विद्यालय परिसर से बस स्टैंड तक एक विशाल जन–जागरण रैली निकाली गई। रैली के दौरान विद्यार्थियों ने वैदिक संस्कृति का अनुसरण करने तथा आर्य समाज की शिक्षाओं को आत्मसात करने का संदेश दिया।

विद्यालय परिसर में वैदिक यज्ञ का आयोजन किया गया, जिसमें शिक्षकों ने सहभागिता की। वैदिक मंत्रोच्चार से संपूर्ण वातावरण आध्यात्मिक ऊर्जा से ओत–प्रोत हो उठा।

प्रधानाचार्या महोदया ने सभी शिक्षकों एवं विद्यार्थियों को डी.ए.वी. स्थापना दिवस की हार्दिक शुभकामनाएँ प्रदान कीं। उन्होंने महर्षि दयानन्द सरस्वती के दूरदर्शी चिंतन तथा ज्ञान, चरित्र–निर्माण और सेवा की भावना को प्रोत्साहित करने वाली डी.ए.वी. परंपरा की गौरवशाली विरासत का स्मरण कराते हुए कहा कि डी.ए.वी. केवल शिक्षा प्रदान करने वाला संस्थान नहीं, बल्कि राष्ट्र निर्माण एवं संस्कारों के संवर्धन का एक सशक्त माध्यम है।

हंसराज पब्लिक स्कूल सेक्टर-6, पंचकूला में विधिक लीगल लिटरेसी

हंसराज पब्लिक स्कूल, सेक्टर–6, पंचकूला में जिला विधिक सेवा प्राधिकरण (DLSA), पंचकूला के सहयोग से विद्यालय के लीगल लिटरेसी क्लब के विद्यार्थियों हेतु विधिक साक्षरता जागरूकता सत्र का आयोजन किया गया। कार्यक्रम का उद्देश्य विद्यार्थियों को उनके कानूनी अधिकारों, कर्तव्यों तथा न्याय व्यवस्था के प्रति जागरूक बनाना था।

कार्यक्रम की अध्यक्षता मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी एवं सचिव, डीएलएसए, पंचकूला श्री अजय कुमार ने की। उन्होंने कहा कि समाज के वंचित, आर्थिक रूप से कमज़ोर एवं जरूरतमंद वर्गों को निःशुल्क विधिक सहायता उपलब्ध कराना इन संस्थाओं का प्रमुख उद्देश्य है। उन्होंने विद्यार्थियों को विधिक जागरूकता के महत्व से अवगत कराया तथा न्याय तक समान पहुंच को लोकतंत्र की आधारशिला बताया।

इस अवसर पर जिला न्यायालय, पंचकूला की अधिवक्ता सुश्री कोम्पल अरोड़ा एवं सुश्री मेघा शर्मा ने भी विद्यार्थियों के साथ संवाद स्थापित किया। विद्यार्थियों ने उत्साहपूर्वक प्रश्न पूछकर अपनी जिज्ञासाओं का समाधान प्राप्त किया।

प्राचार्या श्रीमती जया भारद्वाज ने कहा कि ऐसे कार्यक्रम विद्यार्थियों में कानूनी जागरूकता, सामाजिक उत्तरदायित्व एवं जागरूक नागरिकता के गुण विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

आर्य समाज 150 स्वर्णिम वर्ष मानव सेवा के 1875 - 2025

Registration No. R.N.I. 39\57
Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11\6066\2024-25-26
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103\2024-25-26
Posted at L.P.C.(Delhi RMS)D110006 ON Wednesday & Thursday, 2026

आर्य वीर दल दल दिल्ली प्रदेश का प्रांतीय शिविर सफलता पूर्वक संपन्न

आर्य वीर दल दिल्ली प्रदेश का 10 दिवसीय प्रांतीय शिविर दिल्ली के हंसराज मॉडल स्कूल में आयोजित किया गया। 31 मई, शिविर के समापन समारोह पर ध्वजारोहण श्रीमती सुषमा शर्मा के द्वारा किया गया।

सेन्य टोली का निरीक्षण आर्य युवा समाज के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री योगी सूरी जी द्वारा किया गया। श्री सूरी ने आर्यवीरों को प्रेरणा देते हुए कहा कि आर्यवीर ही सशक्त व श्रेष्ठ समाज का निर्माण कर सकते हैं। उन्होंने आर्य वीरों को प्रतिज्ञा भी करवाई।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री सुरेंद्र कुमार आर्य ने इस अवसर के लिए संदेश में आर्य वीर दल की प्रशंसा की।

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री धर्मपाल आर्य जी ने युवाओं को संगठित रह कर आर्य समाज व आर्य वीर दल का कार्य करते करने की प्रेरणा दी।

मुख्यवक्ता के रूप में दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के महामंत्री श्री विनय आर्य ने समाज में व्याप्त नशा, अन्धविश्वास, जैसी समस्याओं की ओर आर्य वीरों का ध्यान आकृष्ट किया और कहा आर्य वीरों को राष्ट्र रक्षा के लिए पहले से और अधिक सजग व सचेत रहने की आवश्यकता है।

इस शिविर में 300 से अधिक आर्यवीरों को विभिन्न व्यायाम कलाओं के साथ शरीर को मजबूत करने, बौद्धिक शिक्षा के द्वारा चारित्रिक उन्नति करने, आत्मरक्षा के साथ देश में आने वाली विभिन्न आपदाओं में कैसे सेवा कार्य करते हुए लोगों की जान बचाई जाये, इसके लिए विशेष एनडीआरफ टीम के द्वारा आर्य वीरों को प्रशिक्षण दिया गया।

कार्यक्रम में दिल्ली सभा व केंद्रीय सभा के विभिन्न पदाधिकारियों ने भाग लेकर आर्य वीरों को अपना आशीर्वाद प्रदान किया।

श्री जगवीर आर्य व श्री बृहस्पति आर्य के नेतृत्व में आयोजित हुआ। आचार्य रिषभ देव जी द्वारा आर्य वीरों का यज्ञोपवीत संस्कार किया गया। आचार्य संदीप एवं आचार्य आनंद प्रकाश ने बौद्धिक कक्षाओं को संचालन किया।

डी.ए.वी. मण्डी में मनाया डी.ए.वी. स्थापना दिवस

डी.ए.वी. सेंटेनरी पब्लिक स्कूल जवाहर नगर मंडी में डी.ए.वी. स्थापना दिवस श्रद्धा, भक्ति एवं उत्साह के साथ मनाया गया। इस अवसर पर विद्यालय में वैदिक परंपरा के अनुसार हवन–यज्ञ का आयोजन किया गया, जिसमें विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री के.एस. गुलेरिया, अध्यापकों तथा विद्यार्थियों ने भाग लेकर वातावरण को वैदिक मंत्रोच्चारण से भक्तिमय बना दिया।

कार्यक्रम का शुभारंभ हवन–यज्ञ से हुआ। विद्यालय के प्रधानाचार्य ने हवन में आहुति देकर सभी के सुख, समृद्धि एवं उज्ज्वल भविष्य की कामना की। अपने संबोधन में उन्होंने डीएवी आंदोलन के संस्थापक महात्मा हंसराज तथा स्वामी दयानंद सरस्वती के आदर्शों पर प्रकाश डालते हुए विद्यार्थियों को वैदिक संस्कृति, नैतिक मूल्यों एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया।

उन्होंने कहा कि डीएवी संस्थान शिक्षा के साथ–साथ संस्कार, अनुशासन और राष्ट्रप्रेम की भावना विकसित करने के लिए सदैव प्रतिबद्ध हैं। हवन के दौरान विद्यालय परिवार ने विश्व शांति, मानव कल्याण तथा राष्ट्र की प्रगति के लिए प्रार्थना की।

कार्यक्रम के अंत में सभी ने डी.ए.वी. के आदर्शों को अपने जीवन में अपनाने तथा समाज के उत्थान में योगदान देने का संकल्प लिया। विद्यालय में आयोजित इस कार्यक्रम ने विद्यार्थियों में आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति जागरुकता उत्पन्न की।

डी.ए.वी. जगजीतपुर, हरिद्वार में डी.ए.वी. स्थापना दिवस

डी.ए.वी. सेंटेनरी पब्लिक स्कूल, जगजीतपुर, हरिद्वार में डीएवी स्थापना दिवस (फाउंडेशन डे) बड़े हर्षोल्लास में मनाया गया। विद्यालय की यज्ञशाला में यज्ञ का आयोजन किया गया, जिसमें प्राचार्य एवं शिक्षकों ने सहभागिता की।

कार्यक्रम के दौरान डीएवी संस्था के प्रथम मुख्याध्यापक महात्मा हंसराज जी को उनकी अद्वितीय देशभक्ति, त्याग, समर्पण एवं शिक्षा के क्षेत्र में दिए गए अमूल्य योगदान के लिए भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित की गई। प्रधानाचार्य ने अपने संबोधन में कहा कि छात्र महात्मा हंसराज के आदर्शों और गुणों का अनुसरण करें।

उन्होंने कहा उनके पद्मश्री डॉ. पूनम सूरी जी निर्देशन में विद्यालय निरंतर नई ऊँचाइयों को प्राप्त कर रहा है।

प्रधानाचार्य ने विद्यालय की निरंतर प्रगति का श्रेय संस्था के वरिष्ठ अधिकारियों के मार्गदर्शन तथा अभिभावकों के अटूट विश्वास को दिया। उन्होंने कहा कि यही विश्वास एवं सहयोग विद्यालय परिवार को निरंतर बेहतर कार्य करने और नई उपलब्धियाँ अर्जित करने के लिए प्रेरित करता है।

कार्यक्रम का समापन प्रसाद वितरण के साथ हुआ।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **फर्स्ट इम्प्रैशन कार्पोरेट सर्विसिज, (प्रा.) लि.,** ई.113–114, सैक्टर–63, नोएडा, उ.प्र.–201301 (दूरभाष : 120–4246315) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**